# हिंदुत्व से प्रेरित
# विदेशी महिलाएँ

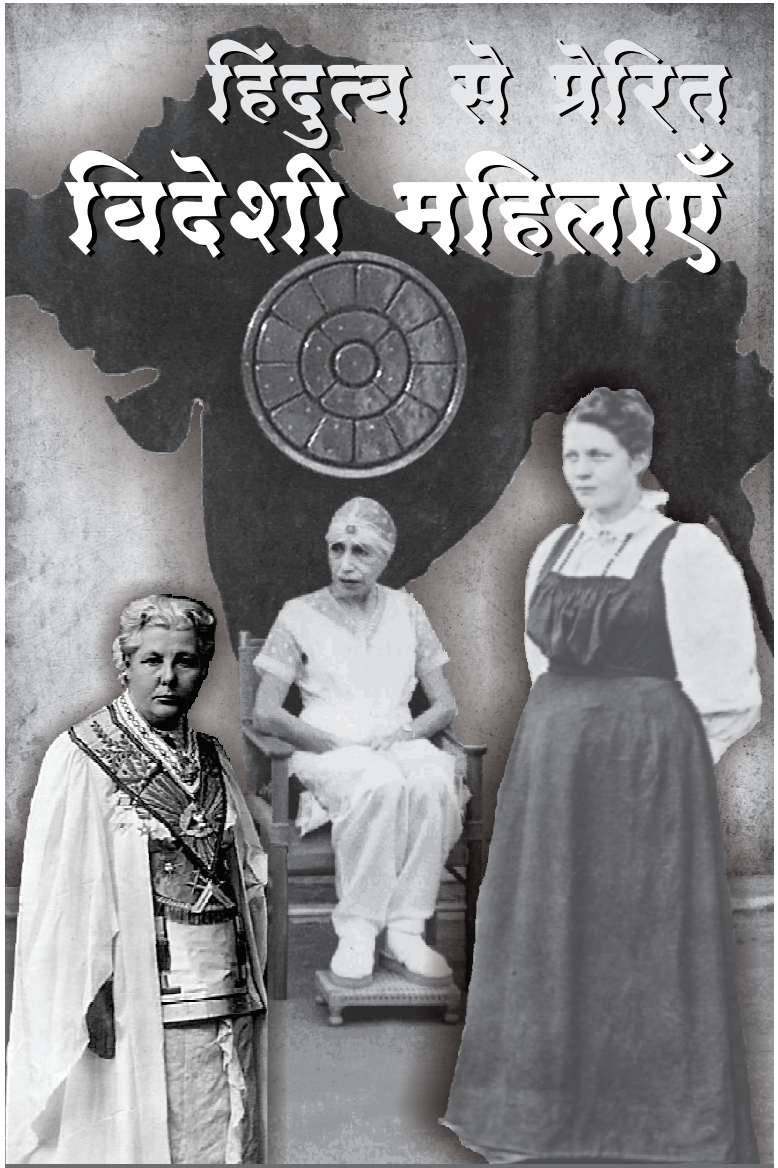

डॉ. सतीश चन्द्र मित्तल

# हिंदुत्व से प्रेरित
# विदेशी महिलाएँ

डॉ० सतीश चन्द्र मित्तल

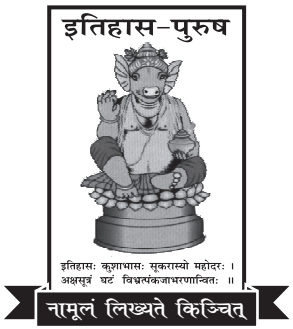


प्रकाशन-विभाग
अखिल भारतीय इतिहास-संकलन योजना
नयी दिल्ली-110 055

**'HINDUTVA SE PRERITA VIDEŚĪ MAHILĀEṀ'**
**by Dr. Satish Chandra Mittal**

*Published by:*
**PUBLICATIONS DEPARTMENT**
**Akhila Bhāratīya Itihāsa Saṁkalana Yojanā**
Baba Sahib Apte Smriti Bhawan, 'Keshav Kunj',
Jhandewalan, New Delhi-110 055
**Ph.:** 011-23675667
**e-mail:** abisy84@gmail.com
**Visit us at:** www.itihassankalan.org

© **Copyright :** Publisher
**First Edition :** Kaliyugābda 5115, i.e. 2014 CE
**Laser Typesetting & Cover Design by:**
Gunjan Aggrawala
**Printed at:** Graphic World, 1659 Dakhnisarai Street,
Dariyaganj, New Delhi-110055
**Price:** ₹ 100/-
**( माधव संस्कृति न्यास द्वारा वित्तपोषित )**

**ISBN :** 978-93-82424-10-9

*प्रकाशक :*
**प्रकाशन–विभाग**
**अखिल भारतीय इतिहास–संकलन योजना**
बाबा साहेब आपटे–स्मृति भवन, 'केशव–कुव ',
झण्डेवालान, नयी दिल्ली–110 055
**दूरभाष :** 011–23675667
**ई–मेल :** abisy84@gmail.com
**वेबसाइट :** www.itihassankalan.org

**© सर्वाधिकार :** प्रकाशकाधीन
**प्रथम संस्करण :** कलियुगाब्द 5115, सन् 2014 ईउ
**लेज़र–टाईपसेटिंग एवं आवरण–सज्जा :**
गुंजन अग्रवाल
**मुद्रक :** ग्राफ़िक वर्ल्ड, 1659, दखनीराय स्ट्रीट,
दरियागंज, नयी दिल्ली–110 002

*सप्रेम भेंट :*

*शिक्षाविद्त्रय*
*सुश्री अर्चना गुप्ता,*
*डॉउ अंजलि जैन एवं*
*डॉउ वन्दना बत्रा*
*को*

# प्राक्कथन

भारत के स्वाधीनता संघर्ष में अनेक राष्ट्रवादी तथा क्रान्तिकारी शक्तियों का योगदान रहा है। इस संघर्ष ने देश-विदेश के अनेक नर-नारियों, युवकों तथा बालकों को प्रेरित किया। इस स्वाधीनता संघर्ष की मूल प्रेरणा आध्यात्मिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक रही। किसी भी स्वतन्त्रता-सेनानी ने कभी भी आर्थिक प्रश्न को लेकर राष्ट्रव्यापी संघर्ष न किया। इस भाँति किसी भी राजनैतिक प्रश्न ने समस्त समाज को आन्दोलित न किया। भारत के गौरवमयी अतीत, इसके अध्यात्म ज्ञान तथा विश्वव्यापी हिंदू-धर्म के श्रेष्ठत्व ने न केवल पुरुषों, अपितु महिलाओं को भी प्रत्यक्ष रूप से आगे आकर कार्य करने को प्रोत्साहित किया। हिंदुत्व से प्रेरित हो, कुछ विदेशी विदुषियों ने भी भारत के धार्मिक, सामाजिक तथा शैक्षणिक कार्यों तथा राष्ट्रीय आन्दोलन में बढ़-चढ़कर भाग लेकर समस्त भारतीय समाज को एक नव ऊर्जा प्रदान की तथा देश के राष्ट्रीय आन्दोलन में आत्मगौरव तथा स्वाभिमान का भाव जगाया।

प्रस्तुत ग्रंथ में तीन सुविख्यात विदेशी विदुषियों– **भगिनी निवेदिता**, **डॉ० एनी बेसेन्ट** तथा **श्रीमाँ** के कुछ प्रमुख जीवन-प्रसंगों तथा उनके विचारों पर प्रकाश डाला गया है।

मार्गरेट एलिजाबेथ नोबल, स्वामी विवेकानन्द के ओजस्वी तथा प्रेरक विचारों से अभिभूत हो भारत आयीं। उन्होंने न केवल व्यावहारिक वेदान्त का प्रत्यक्ष उदाहरण प्रस्तुत किया, अपितु अपनी सेवा-सुश्रूषा, भारतीय कन्याओं को शिक्षा, हिंदू-धर्म के प्रचार तथा राष्ट्रीय आन्दोलन में बढ़-चढ़कर भाग लेकर भारतीय जनसमाज को विस्मित कर दिया। सन् 1900-'11 तक अनेक क्रान्तिकारियों की मार्गदर्शिका बनीं। आज भी भारत के लाखों युवक उनके नाम को सम्मान देते हुए उन्हें 'भगिनी निवेदिता' के नाम से जानते हैं।

दूसरी प्रसिद्ध महिला श्रीमती एनी बेसेन्ट थीं जो सन् 1893 में भारत में

थियोसोफिकल सोसायटी में कार्य करने के लिए आयीं, परन्तु भारतीय जीवन से समरस हो गयीं। उन्होंने भारतीय शिक्षा, धर्म तथा राष्ट्रीय आन्दोलन में महान् योगदान किया। उनके ही प्रयासों में महामना पं॰ मदन मोहन मालवीय से मिलकर काशी हिंदू विश्वविद्यालय का निर्माण हुआ। अपने चालीस वर्ष के अनुभव के बाद उन्होंने सार्वजनिक रूप से घोषित किया कि हिंदुत्व के बिना भारत का कोई भविष्य नहीं है। उन्होंने विश्व के सभी प्रमुख धर्मों का तुलनात्मक अध्ययन करके विश्व में हिंदू-धर्म को सर्वोच्च तथा सर्वश्रेष्ठ बतलाया। प्रथम महायुद्ध के समय जब भारतीय समाज सामान्यतः अंग्रेज़-भक्ति में लगा था, उन्होंने तथा लोकमान्य तिलक ने होमरूल आन्दोलन चलाकर ऊँघते भारत को जगाया। इसी कारण वह भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस की पहली महिला अध्यक्ष बनीं।

तीसरी प्रसिद्ध महिला मिर्रा अल्फासा थीं जो विश्व में 'श्रीमाँ' के नाम से सुविख्यात हैं। महर्षि अरविन्द के रूप में उनके मन में भगवान् कृष्ण का साकार रूप दिखा। वह पूर्णतः भारत की हो गयीं। महर्षि अरविन्द-जैसे महान् योगी ने ही उन्हें 'श्रीमाँ' के नाम से सम्बोधित किया। उनकी महान् देन पाण्डिचेरी में 'श्रीअरविन्दाश्रम' तथा विश्वविख्यात अंतर्राष्ट्रीय भ्रातृत्व के नगर 'ओरेविल' की स्थापना है। जहाँ उन्होंने बच्चों की शिक्षा द्वारा मानव-निर्माण, चरित्र-निर्माण की प्रक्रिया का प्रमाण प्रस्तुत किया, वहाँ भारत की आध्यात्मिकता को विश्व में गौरवान्वित किया। देश के विभाजन के पश्चात् भी उन्होंने भारत को अखण्डित ही माना तथा श्रीअरविन्दाश्रम में अखण्ड भारत का मानचित्र स्थापित किया। यद्यपि इसमें भारत सरकार ने अनेक रोड़े अटकाये।

प्रस्तुत ग्रन्थ के लेखन में लेखक ने देश के अनके विद्वानों का प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से सहयोग लिया है, लेखक उन सभी का अत्यधिक ऋणी है।

आशा है कि देश की नवयुवक पीढ़ी उपर्युक्त तीनों विदुषियों को भारतीयता, राष्ट्रीयता तथा आध्यात्मिकता के सन्दर्भ में मार्गदर्शक के रूप में लेगी तथा उनकी कृतियों का गहराई से अध्ययन कर, स्वाधीनता के पश्चात् इस भ्रमित कालखण्ड में, अग्रसर होकर राष्ट्रहित को सर्वोपरि स्थान देगी।

**–सतीश चन्द्र मित्तल**



# विषयानुक्रमणिका


| | | |
|---|---|---|
| *प्राक्कथन* | | *(vi)* |
| **अध्याय** | **विषय** | **पृ॰ अंक** |
| अध्याय एक | : भगिनी निवेदिता | 1 |
| अध्याय दो | : डॉ॰ एनी बेसेन्ट | 37 |
| अध्याय तीन | : श्रीमाँ | 75 |
| उपसंहार | | 101 |
| परिशित | | 107 |
| आधार-ग्रन्थ-सूची | | 108 |

## भगिनी निवेदिता (मार्गरेट एलिजाबेथ नोबल)

(28 अक्टूबर, 1867–13 अक्टूबर, 1911)

## अध्याय : एक

# भगिनी निवेदिता

स्वामी विवेकानन्द की आध्यात्मिक पुत्री, महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर की बहुआयामी प्रतिभा से युक्त 'सती' तथा 'लोकमाता'[1], कला-शिरोमणि अवनीन्द्रनाथ की गौरांग-कला के प्रभाव से मुक्त 'महाश्वेता', महर्षि अरविन्द की 'दीपशिखा'[2], सुब्रह्मयम भारती की 'शक्तिरूपा' तथा नरेन द्वारा माँ शारदा मणि को निवेदित (अर्थात् समर्पित), जो विश्व में 'निवेदिता' के नाम से विख्यात हैं, निःसन्देह विश्व की श्रेष्ठतम महिलाओं में से थीं। उनका सरल, सात्त्विक, सहज जीवन आज भी भारत के सहस्रों छात्र-छात्राओं, नवयुवकों, महिलाओं, राष्ट्रप्रेमियों तथा क्रान्तिकारियों की सतत प्रेरणा का स्रोत है। भारतीय परम्परा के अनुसार साधु बननेवाली वह प्रथम पाश्चात्य महिला थीं।[3] उत्तराधिकार में भगिनी निवेदिता को मिला था धर्म तथा संघर्षमय जीवन का अद्‌भुत समन्वय। उनके पूर्वज उनके जन्म से लगभग पाँच शताब्दी पूर्व स्कॉटलैण्ड से आकर आयरलैण्ड में वैशलेयन चर्च (Wesleyan Church) के सचिव बने थे तथा नाना रिचर्ड हैमिल्टन ने आयरलैण्ड के होमरूल आन्दोलन में भाग लिया था।

आयरलैण्ड के राजनीतिक संघर्षपूर्ण वातावरण में जन्मीं, आध्यात्मिक

1. प्रणव खुल्लर, 'सिस्टर निवेदिता स्ट्रीट ऑफ़ सर्विस', *द टाइम्स ऑफ़ इण्डिया*, 28 अक्टूबर, 2004
2. *वही*
3. डॉ॰ एस॰ एस॰ नागौरी एवं जीवेश नागौरी, *भारतीय इतिहास कोश* (आगरा 1997), पृ॰ 253



वातावरण में पली, सेवा तथा समर्पण की भावना लिए बड़ी हुईं मार्गरेट एलिथाबेथ नोबल (Margaret Elizabeth Noble) का जन्म 28 अक्टूबर, 1867 के उत्तरी आयरलैण्ड के डंगन्नोन[1] (Dungannon, Northern Ireland) में हुआ था। धर्म के प्रति आस्था, अद्‌भुत साहस तथा देशभक्ति के साथ पिता से ग़रीबों के प्रति संवेदनशीलता तथा सेवा और माता से अत्यन्त विनम्रता तथा समर्पण की भावना मिली थी। एक बार इनके पिता सैम्युअल रिचमंड नोबल (Samuel Richmond Noble) के एक वरिष्ठ ईसाई मित्र इनके घर पर आये। वह मार्गरेट के आकर्षक व्यक्तित्व तथा शालीनता को देखकर अत्यधिक प्रभावित हुए और उनसे कहा, 'महान् देश भारत ने मुझे बुलाया, मैं चला गया, मार्गरेट! हो सकता है कि उस देश को तुम्हारी सेवाओं की आवश्यकता हो।'[2]

मार्गरेट के पिता एक अध्यापक थे तथा वह लन्दन में रहने लगे थे, जहाँ उनकी दूसरी पुत्री मेरी तथा पुत्र रिचमंड का जन्म हुआ। 34 वर्ष की आयु में इनके पिता की मृत्यु हो गई थी। इससे पूर्व इनके पिता ने अपनी पत्नी मेरी इसाबेल हेमिल्टन (Mary Isabel Hamilton) से एक बार कहा था, "मार्गरेट के जीवन में एक बुलावा आयेगा, प्रभु की ओर से जब ऐसा अवसर आये तो उसे जाने देना, उसे कभी मत रोकना। उसके द्वारा महत्त्वपूर्ण कार्य संपादन होगा।"[3]

## शिक्षा तथा शिक्षक

मार्गरेट का अध्ययन कांग्रीगेशनलिस्ट चर्च (Congregationalist Church) द्वारा सञ्चालित हैलीफैक्स कॉलेज़ (Halifax College) में वहाँ के छात्रावास में रहते हुए हुआ। अध्ययन के साथ उन्होंने संगीत, चित्रकला तथा जीवविज्ञान में बहुत रुचि ली। 17 वर्ष की आयु में वह केस्बिक स्कूल (Keswick School) में शिक्षिका लग गयीं। उन्हें छोटे बच्चों को पढ़ाने में बड़ा आनन्द आता। 1892 में रस्किन में उन्होंने अपना एक स्कूल भी खोला। वह निकट के खदान-क्षेत्र में समाज सेवा में भी लग गयीं। इन्होंने सरल, सुन्दर तथा प्रभावी शैली में वैज्ञानिक तथा राजनीतिक विषयों

1. दिनांक 07 दिसम्बर, 2007 को भगिनी निवेदिता के जन्मस्थान 16 स्कॉच स्ट्रीट, डंगन्नोन, काउंटी थाइरोन, उत्तरी आयरलैंड (16 Scotch street, Dungannon, County Tyrone, Northern Ireland) पर 'अल्स्टर हिस्ट्री सर्किल' (Ulster History Circle) नामक संस्था द्वारा निवेदिता की स्मृति में एक नीला शिलापट्ट लगाया गया है।
2. *भगिनी निवेदिता*, विद्या भारती प्रकाशन, कुरुक्षेत्र, पृ॰ 6
3. *वही*, पृ॰ 6

पर लेख लिखे। एक इंजीनियर से इनकी विवाह की बात भी चली, परन्तु शीघ्र ही उसकी मृत्यु हो गई थी।

## जीवन में परिवर्तनकारी मोड़

चिन्तन-मनन से शीघ्र ही मार्गरेट के मस्तिष्क में विभिन्न विचार आने लगे। इनका मन उद्विग्न रहने लगा। इन्हें लगा कि सेवा ही सर्वोत्कृष्ट आनन्द का मार्ग खोलती है। इन्होंने ईसाई-धर्म का गम्भीरता से अध्ययन किया, पर सन्तोष न हुआ। वह चर्च की संकीर्णता से परेशान हो गयीं। उन्होंने बौद्ध-धर्म का भी चिन्तन किया। जिज्ञासा कुछ शान्त हुई, परन्तु मार्गरेट की जिज्ञासा पूर्ण रूप से तब शान्त हुई, जब स्वामी विवेकानन्द विश्व धर्म सम्मेलन, शिकागो के पश्चात् 1895 में पहली बार इंग्लैण्ड आये। 21 अक्टूबर 1895 को लन्दन के पिकाडिली के प्रिंसेस हॉल में स्वामी जी का ओजस्वी भाषण सुना। मार्गरेट भाषण सुनकर अभिभूत हो गयीं। 16 नवम्बर, 1895, रविवार को मार्गरेट की एक सहेली ईसाबेल मार्गेशन (Isabel Margesson) ने अपने घर पर स्वामी जी को बुलाने का आयोजन किया। यहीं पर स्वामी जी से मार्गरेट की प्रथम भेंट हुई। निःसंदेह यह मार्गरेट के जीवन का परिवर्तनकारी मोड़ था। वह स्वामी विवेकानन्द के व्यक्तित्व तथा अथाह ज्ञान के सम्मुख नतमस्तक हो गयीं, उन्हें लगा कि उन्हें वह मार्ग मिल गया जिसे वह ढूँढ़ रही थी। स्वामी ने अपने भाषण में कहा, "जो अनन्त है, असीम है, वही अभूत है, वही शाश्वत है। उसे छोड़कर समस्त विषयवस्तु नाशवान् है, अस्थायी है, दुःखप्रद है। इसी बात को भली प्रकार से समझ लेने के कारण भारत के लोग सांसारिक सुखोपभोग को विष की भाँति समझकर उसे छोड़ देते हैं तथा केवल परमानन्द की खोज में दौड़ते हैं। एकमात्र भारत ही ऐसा देश है, जिसके मानव-दर्शन ने इस उदात्त भावनाओं से अनन्त होकर पशु-पक्षी आदि सभी में परब्रह्म का दर्शनकर उन्हें गले लगाया है।" स्वामी जी ने अपने भाषण में पुनः कहा, "सत्य ही ईश्वर है तथा हर धर्म ईश्वर तक पहुँचने का प्रमुख मार्ग है।" भाषण सुनकर मार्गरेट रोमाञ्चित हो गयीं। उनका हृदय झंकृत करने लगा।

जुलाई, 1896 में स्वामी विवेकानन्द का दूसरी बार इंग्लैण्ड आना हुआ। मार्गरेट ने मनोयोग से उनके सभी भाषणों को सुना। वह उनके विचारों तथा भावनाओं से अत्यधिक प्रभावित हुईं। स्वामी जी ने एक बार प्रश्नोत्तर में भारत की दीन-हीन दशा का चित्रण करते समय यह मांग की, "संसार में आज बीस नर-नारियों की आवश्यकता है जिनमें इतना साहस हो कि बाहर सड़क पर खड़े

**भगिनी निवेदिता, 1884 में विद्यालय छोड़ने के बाद**

होकर कह सकें कि हमारे पास ईश्वर के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। कौन आगे आता है?" तभी से मार्गरेट के हृदय में भारत के प्रति अगाध श्रद्धा तथा वहाँ जाने की तीव्र इच्छा उत्पन्न हुई। मार्गरेट ने स्वयं स्वामी जी से कहा, "स्वामी जी, यह तो मैं नहीं जानती कि अन्य उन्नीस व्यक्ति कौन होंगे, पर बीसवीं मैं हूँ जो भारत जाने को तत्पर

हूँ।" और तभी से आयरलैण्ड की इस महान् पुत्री का लक्ष्य भारत की सेवा करना बन गया। इंग्लैण्ड में 'सीसैम क्लब' नामक बौद्धिक संगठन में भी स्वामी जी के भाषण हुए। तभी से मार्गरेट ने स्वामी जी के साथ कार्य करने का निश्चय किया। स्वामी ने मार्गरेट को लन्दन की वेदान्त सोसायटी का कार्य सौंपा। 16 सितम्बर, 1896 को स्वामी जी भारत लौट आये। बाद में स्वामी विवेकानन्द ने एक बार कहा था, "इंग्लैण्ड में निवेदिता मेरी साधना की सुन्दरतम मञ्जरी है।"

## स्वामी जी से पत्र-व्यवहार

मार्गरेट के भारत-आगमन के सन्दर्भ में स्वामी विवेकानन्द से पत्र-व्यवहार दोनों की परस्पर मानसिकता तथा भावनाओं पर प्रकाश डालता है। पत्रों से ज्ञात होता है कि मार्गरेट ने आग्रहपूर्वक भारत आने की इच्छा व्यक्त की। मार्गरेट ने लिखा, 'मुझे स्पष्ट बताने का कष्ट करें कि क्या मेरा जीवन भारत के किसी उपयोग में आ सकता है? मैं जानना चाहती हूँ। मेरी इच्छा है कि भारत मुझे जीवन की पूर्णता की शिक्षा प्रदान करे।' भारत आने से पूर्व स्वामी विवेकानन्द ने मार्गरेट से पूछा, 'तुम्हारी राष्ट्रीयता क्या है? मार्गरेट ने सीधा उत्तर दिया, 'मैं निश्चित रूप से इंग्लिश हूँ, मैं यूनियन जैक के प्रति उतनी ही भावना रखती हूँ, जितनी की एक भारतीय नारी अपने इष्टदेव के प्रति रखती है। एक दूसरे पत्र ने मार्गरेट ने लिखा, 'आपके देशवासी, मेरे देशवासी होंगे।' स्वामी विवेकानन्द ने एक पत्र में लिखा, 'अपने देश में नारी-उत्थान की मेरी निश्चित योजना है। मैं राष्ट्रीय स्तर पर बालिकाओं की शिक्षा के लिए एक संस्था चलाना चाहता हूँ जिससे न केवल भारतीय पत्नियों व माताओं का, अपितु ऐसी ब्रह्मचारिणियों का भी निर्माण हो जो अपनी जाति का उत्थान करें। ऐसी महिला की आवश्यकता है जो यह भार सम्भाल ले।'

स्वामी जी ने मार्गरेट की भारत के प्रति प्रेम तथा अगाध श्रद्धा, वेदान्त के प्रति आस्था, समाजसेवा तथा भारत की महिलाओं के प्रति कार्य करने की क्षमता को देखते हुए, मार्गरेट को एक पत्र में लिखा, 'बिना किसी संकोच के बता रहा हूँ कि यह मेरा निश्चित दृष्टिकोण है कि भारत में कार्य की दृष्टि से तुम्हारा भविष्य उज्ज्वल है। भारत की जलवायु भयंकर गर्म है। यहाँ के लोग दरिद्रता, अंधविश्वास, जातिवाद के अंधकार में जकड़े हुए हैं। उनके बीच यदि तुम काम करने का साहस रखती हो तो तुम्हारा स्वागत है।' सन्देह की घड़ी में स्वामी जी ने एक पत्र में लिखा, 'हमें पुरुष नहीं, तुम-जैसी एक महिला चाहिए जो भारतीयों, विशेषकर महिलाओं को शिक्षित करे। भारत को आज एक शेरनी की ज़रूरत है।' पत्र पाकर मार्गरेट की दुविधा ख़त्म



हो गयी। उन्होंने भारत जाने का निश्चय किया। उन्होंने अपने रस्किन स्कूल का कार्यभार अपनी बहिन मेरी को सौंपा।

## मार्गरेट का भारत का आमगन

दिनांक 28 जनवरी, 1898 को जब वह 'मोम्बासा' (Mombasa) नामक जलयान से कोलकाता के बन्दरगाह पहुँचीं, तब स्वामी विवेकानन्द अपने गुरुभाइयों के साथ उनके भव्य स्वागत के लिए पहुँचे। मार्गरेट ने उसी दिन अपनी डायरी में लिखा, '28 जनवरी 1898 विजयी हो। आज मैंने भारतभूमि का दर्शन किया है।

कुछ दिनों बाद स्वामी जी की दो अमेरिकन शिष्याएँ भी आ गई थीं। वे थीं— श्रीमती सारा चैपमेन बुल (Sara Chapman Bull : 1850-1911) तथा जोसेफिन मैक्लियॉड (Josephine MacLeod : 1858-1949)। अब वे तीनों साथ-साथ रहने लगीं। इन दिनों स्वामी जी का उनसे चर्चा का विषय होता था भारत का इतिहास। इसके साथ-साथ वह भारत के संतों तथा ग्रंथों की भी चर्चा करते थे। दो मास बाद अर्थात् 25 मार्च, 1898 का दिवस मार्गरेट के जीवन का पवित्रतम दिवस था, जब स्वामी विवेकानन्द जी उसे मठ ले गये। पूजा-अर्चना की। माँ शारदामणि (1853-1920) मार्गरेट को देखकर गद्‌गद हो गयीं। उन्होंने डबडबाई आँखों से कहा, "बेटी, नरेन ने मुझे सब कुछ बता दिया है। आज से तू इस आश्रम में मेरी बेटी और गुरुभाइयों की बहिन के रूप में सुशोभित होगी। नरेन ने तुम्हें मेरे लिए निवेदित किया है। अतः अब तू 'निवेदिता' कहलायेगी।" माँ ने अन्य शिष्यों से कहा, "देखो, नरेन पश्चिम से इस श्वेत काया को ठाकुर के चरणों में उत्सर्ग करने लाया है।" स्वामी विवेकानन्द ने उसे आशीर्वाद देते हुए कहा, "एक माता का हृदय, एक योद्धा की संकल्प-शक्ति, पवन-सी मिठास तथा अग्निज्ज्वाला में अंकित बलिदान भाव— सभी कुछ तुम्हें प्राप्त हों। तुम भारत की पुत्री, सेविका एवं मित्र— सभी कुछ बन जाओ।"[1]

और तभी से मार्गरेट भारतीयों के लिए सिस्टर या भगिनी निवेदिता बन गयीं। उन्होंने भारत के अनुरूप अपने जीवन को साधा। श्वेत लम्बा गाऊन पहना, गले में रुद्राक्ष की माला डाली, बांग्ला सीखी, भारत का साहित्य पढ़ा, भारत की सेवा में अपने को पूर्ण समर्पित कर दिया। अब उसका एक ही मंत्र था— भारत की सेवा,

1. डॉ॰ हरवंशलाल ओबराय, *डॉ॰ हरवंशलाल ओबराय समग्र*, खण्ड 2 (बीकानेर, 2010), पृ 195

**श्री शारदा माँ एवं सुश्री भगिनी निवेदिता**
**( कोलकाता, 1898 )**

सेवा और सेवा।

भगिनी निवेदिता ने सेवा का मार्ग इसलिए भी चुना कि उन्होंने अपने भारत-भ्रमण में भारतीय मन्दिरों के तथा कलाकृतियों के खण्डहरों व उनके अवशेषों को देखा था, जिन्हें देख उनकी भारतभक्ति तथा श्रद्धा बहुत बढ़ी थी। वह यह भी जानती थीं कि भारत में अंग्रेजों को रोकना सम्भव न होगा। अतः उन्होंने



भारतवासियों के प्रति अपनी तेजस्विता अपनी सेवा से प्रकट करने का निश्चय किया। तीन महीने बाद कहा, "काली माँ सबकी अपेक्षा हमारे अधिक निकट है। अभिन्न अंग है।"

## कन्या-विद्यालय का आरम्भ

स्वामी विवेकानन्द के विचारों को साकार करने के लिए 13 नवम्बर, 1898 को कोलकाता के बाग़बाज़ार क्षेत्र के 16, बोसपारा लेन (अब 5, निवेदिता लेन) में एक छोटा-सा विद्यालय खोला गया। पढ़ाई के साथ दस्तकारी व सिलाई सिखाने की भी व्यवस्था की गयी। पढ़ाई के अतिरिक्त मूर्तिकला तथा कुछ विषयों का ज्ञान कराने की व्यवस्था की गयी। प्रारम्भ में बंगाली समाज के व्यक्ति उन्हें ईसाई-मिशनरी समझ घृणा करते तथा स्पर्श से परहेज करते, परन्तु भगिनी निवेदिता ने अपने मृदुल स्वभाव से उनका मन जीत लिया।

तत्कालीन बंगाली समाज में सामान्यतः कन्याओं को स्कूल भेजने की प्रथा न थी। छोटी आयु में ही उनके विवाह कर दिए जाते थे। फलस्वरूप अनेक कन्याएँ विधवा हो जाती थीं तथा उनकी संख्या बढ़ती जाती थी। परन्तु माता-पिता उन्हें शिक्षा न देते थे। परन्तु भगिनी निवेदिता ने अपने मृदुल स्वभाव से लोगों के हृदयों को जीत लिया। उन्होंने घर-घर जाकर कन्याओं को विद्यालय में प्रवेश के लिए प्रोत्साहित किया। इसके लिए निवेदिता ने अनेक कष्ट सहे। कई बार गर्मी में पंखा भी न होने पर उनके माथे में बड़ा दर्द हो जाने पर वह दोनों हाथों से उसे दबाए बैठे रहती थीं। शीघ्र ही उनका विद्यालय प्रगति करने लगा। कन्या-विद्यालय में पढ़नेवालों की संख्या बढ़ने लगी। विद्यालय की महत्ता तब और बढ़ गई जब केशवचन्द्र सेन (1838-1884), रवीन्द्रनाथ ठाकुर (1861-1941), जगदीशचन्द्र बसु (1858-1937) आदि के जैसे प्रतिष्ठित परिवारों की कन्याएँ भी यहाँ पढ़ने लगीं। संख्या बढ़ने से शीघ्र ही स्थान, व्यवस्था तथा खर्चे की समस्या बढ़ी। भगिनी निवेदिता ने धन एकत्रित करने के लिए विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लेख लिखे। उन्होंने धन इकट्ठा करने के लिए इग्लैण्ड तथा अमेरिका जाने की भी योजना बनायी।

## कोलकाता में प्लेग का प्रभाव

मार्च, 1899 में कोलकाता में प्लेग की भयंकर बीमारी फैली। भगिनी निवेदिता ने लोगों का जीवन बचाने के लिए भरसक प्रयत्न किया। वह स्वामी सदानन्द तथा

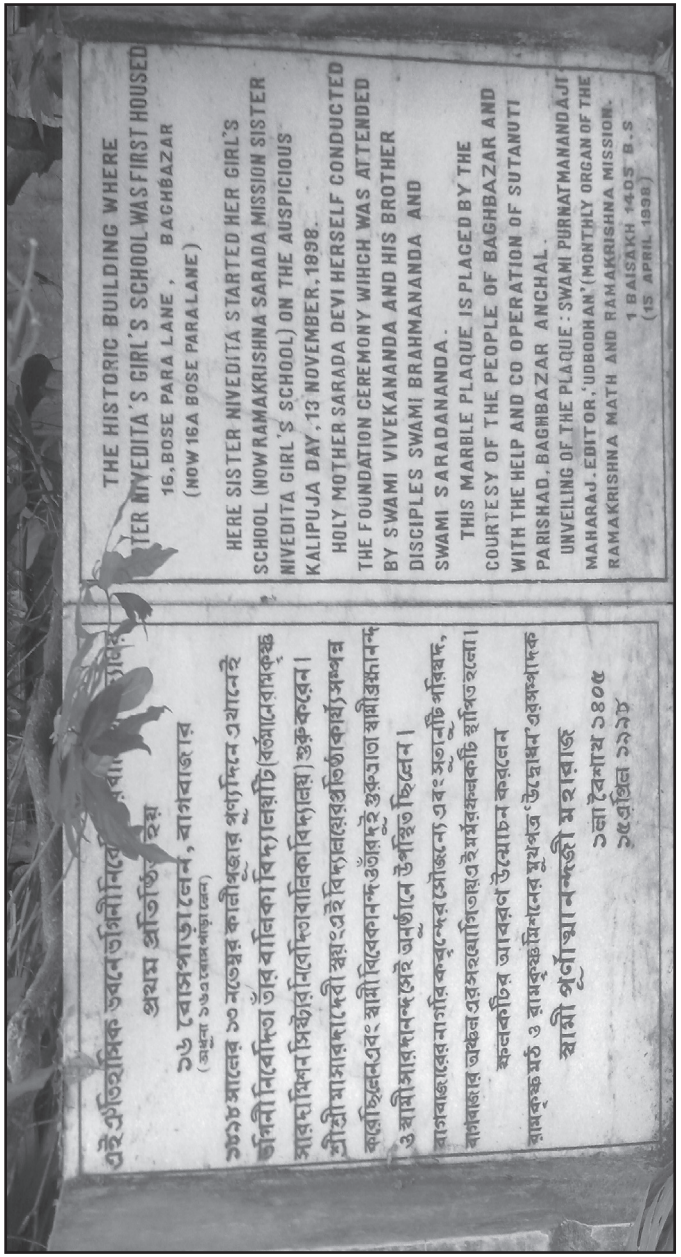


**कोलकाता के बागबाज़ार क्षेत्र के 16, बोसपारा लेन में लगा सिलापट्ट, जहाँ भगिनी निवेदिता ने कन्या-विद्यालय शुरू किया था**



स्वामी शिवानन्द (1854-1934) के साथ रोगियों की सेवा में लग गयीं। वह पूर्णतः भारतीय जनजीवन से आत्मसात हो गयीं। उन्होंने नगर की नालियों, सड़कों, यहाँ तक की संडासों की स्वच्छता में अपना पूरा योगदान दिया। उनके इस सेवा-कार्य को देखकर अनेक बंगाली महिलाओं तथा पुरुषों ने भी उनका साथ देना शुरू किया। उन्होंने सामाजिक कार्यकर्ताओं की एक समिति भी बनायी। सेवा करते समय वह स्वयं रोगग्रस्त हो गयीं। इसी भाँति उन्होंने बंगाल में आई भयंकर बाढ़ तथा अकाल के समय पीड़ितों की सहायता में भारतीयों के सम्मुख एक आदर्श प्रस्तुत किया। भगिनी निवेदिता ने पहले से ही कहा था, "सेवा ही सर्वोत्कृष्ट आनन्द का मार्ग है, मनुष्य का वास्तविक अलंकार और विश्वसनीय मित्र सेवा ही है। उसी से व्यक्तित्व के सारे स्तर और समस्त क्षमताएँ शतदल की भाँति विकसित और श्रीसंपन्न बनती हैं। सेवा का मार्ग साधना और समर्पण का मार्ग है।"

## अमेरिका तथा यूरोप की यात्रा

कन्या-विद्यालय में कन्याओं की संख्या तथा शिक्षा में उन्नति के साथ विद्यालय के लिए धन की आवश्यकता बढ़ी। स्वामी विवेकानन्द की अनुमति से निवेदिता 20 जून, 1899 को यूरोप के लिए जलयान द्वारा गयीं। वह यूरोप से अमेरिका पहुँचीं। वहाँ उन्होंने कुछ अमेरिकियों का भारत के प्रति भिन्न दृष्टिकोण तथा प्रचार देखा। न्यूयॉर्क के प्रसिद्ध पत्र *'न्यूयॉर्क हेराल्ड'* (*'New York Herald'*) ने तो पहले ही कह दिया था तथा भविष्य में ईसाई-पादरियों को भारत में न भेजने की सलाह दी थी। पत्र का विचार था कि भारत-जैसे ज्ञानवान् देश में ईसाइयत का प्रचार व्यर्थ होगा। इसके कुछ विपरीत परिणाम भी हुए। कुछ ईसाई-पादरियों ने स्वामी विवेकानन्द के विरुद्ध झूठे और मनगढ़ंत आरोप लगा उन्हें अमेरिका से भगाने की भी कुचेष्टा की थी। भगिनी निवेदिता को भी ऐसी ही स्थिति का सामना करना पड़ा। कुछ पादरी भारत के प्रति विषवमन तथा भारत का भ्रामक तथा वीभत्स चित्र रख रहे थे। अतः भगिनी निवेदिता ने यहाँ धन-संग्रह की अपेक्षा धर्म-प्रचार को मुख्य लक्ष्य रखा। उन्होंने ईसाई-पादरियों के हिंदू-धर्म तथा संस्कृति के विरुद्ध दुष्प्रचार का भण्डाफोड़ किया। भारत की दीनहीन दशा की कारण-मीमांसा की तथा इसका प्रमुख कारण लम्बे समय तक भारत को विदेशी शासकों का शिकार होना बतलाया। उन्होंने भारत के गौरवमय अतीत का वर्णन करते हुए अमेरिकावासियों को भारत के प्रति सही दृष्टिकोण अपनाने को कहा। उन्होंने भारत के प्रति ईसाई-पादरियों के कुप्रचार का खण्डन किया तथा ईसा मसीह के सिद्धान्तों के विपरीत बतलाया। उन्होंने अमेरिका

के प्रमुख प्रान्तों का दौरा किया। वह न्यूयॉर्क, ऐन आर्बर, जैक्सन, डिट्रापर, कान्यास सिटी, मिनियापोलिस, बोस्टन और जमैका (मैसाचुसेट्स) गयीं। स्थान-स्थान पर उन्होंने भारतीय नारी के आदर्श, गौरव तथा वर्तमान अशिक्षा की स्थिति भी रखी। उन्होंने अमेरिका में 'श्रीरामकृष्ण समिति' की भी स्थापना की। परन्तु धन जुटाने के क्षेत्र में अधिक सफलता न मिली।

भगिनी निवेदिता ने यूरोप तथा अमेरिका की यात्रा के दौरान अपनी श्रेष्ठ पुस्तक *'काली द मदर'* (*'Kali The Mother'*) लिखी जो सन् 1900 में लन्दन से प्रकाशित हुई। सम्भवतः यह किसी काली-भक्त की अपनी इष्टदेवी के प्रति सबसे बड़ी समर्पित अभिव्यक्ति थी। उन्होंने अपने लेखों में माँ काली के सामाजिक, सैद्धान्तिक तथा वीरत्व के सद्गुणों का गम्भीर विश्लेषण किया। निवेदिता ने भारत के विभिन्न भागों-प्रांतों में माँ काली के स्वरूप का दर्शन किया, जैसे– दक्षिण में 'अम्मा', महाराष्ट्र में 'भवानी', सिखों में 'शक्तिरूपा' (खड्ग), चित्तौड़ में काली, उत्तर-पश्चिम प्रांतों (वर्तमान उत्तरप्रदेश) में व मैसूर व तमाम दक्षिण में नवदुर्गा पूजा के साथ दशहरा-पूजन, बिहार की सैनिक-परम्परा में वीराष्टमी आदि। बंगाल में जगद्धात्री को क्रमशः दुर्गा, काली तथा जगद्धात्री की सामाजिक, सैनिक तथा सैद्धान्तिका का समुच्चय भाव व्यक्त करनेवाली बताया। भगिनी निवेदिता ने काली माँ में विभिन्न गुणों का समावेश बतलाया है। उसका तात्त्विक विवेचन करते हुए, समस्त भारत में उसे 'भारत माँ की जय' के उद्घोष में पाया है।[1]

सन् 1901 में भगिनी निवेदिता भारत वापस लौटीं। उन्होंने बोसपारा लेन-स्थित कन्या विद्यालय को एक 'लॉज' बना दिया। अतः स्कूल के साथ यह यात्रियों के ठहरने का स्थल बन गया। इन्हीं दिनों जर्मनी से कुमारी क्रिस्टीन ग्रीनस्टैडेल (Sister Christine or Christina Greenstidel : 1866-1930) भारत में सेवा के निमित्त आयीं। अब भगिनी निवेदिता तथा क्रिस्टीन ने विद्यालय को चलाया। अब विद्यालय में न केवल कन्याएँ, बल्कि उनकी माताएँ भी शिक्षा ग्रहण करने लगीं।

## गुरु का निर्वाण

दिनांक 29 जून, 1902 को निवेदिता अपने गुरु स्वामी विवेकानन्द के दर्शन करने बेलूर मठ गयीं। अत्यधिक अस्वस्थ स्वामी जी ने कहा, "महानतम आत्मा मुझे बुला

1. 'सिस्टर निवेदिता ऑन दुर्गा पूजा', *द आर्गनाइज़र*, पृ 49-50, 'दीपावली अंक', 1964



रही है। मैं मृत्यु का आलिंगन करने के लिए अपने आपको तैयार कर रहा हूँ।" 02 जुलाई, एकादशी के दिन उनका उपवास था, परन्तु स्वामी जी ने भगिनी निवेदिता के लिए भोजन बनवाया। अपने हाथों से परोसा, उसके हाथ धुलवाये तथा मना करने पर भी सूखे कपड़े से निवेदिता के हाथ सुखाये। निवेदिता अत्यन्त चिन्तित एवं दुःखी होकर बोलीं, "स्वामी जी ! उचित तो यह है कि मैं आपकी सेवा करूँ, लेकिन उल्टे आप मेरी सेवा कर रहे हैं।" स्वामी जी ने भावविभोर हो कहा, "ईसा मसीह ने स्वयं अपने हाथों से अपने शिष्यों के पैर धोये थे, क्या यह सच्चाई नहीं है ?" निवेदिता ने कहना चाहा, हाँ, लेकिन उन्होंने अपने जीवन के अन्तिम क्षणों में किया..., पर वह कहते-कहते रुक गयीं। भगिनी निवेदिता वापस लौटीं। परन्तु यह उनकी अपने गुरु स्वामी विवेकानन्द से अन्तिम भेंट थी।

दिनांक 04 जुलाई, 1902 को प्रातः 8 बजे से 11 बजे तक स्वामी विवेकानन्द समाधिस्थ रहे जो प्रायः आकस्मिक था। दोपहर में वह स्वामी प्रेमानन्द के साथ घूमते रहे तथा एक वैदिक स्कूल की स्थापना की योजना रखी। शाम को वह पुनः अपने कमरे में चले गये। एक घण्टे पुनः समाधि ली। तत्पश्चात् वह शान्त मन से लेट गए तथा दो दीर्घ श्वास के साथ उनका महाप्रयाण हुआ। भगिनी निवेदिता इस महादुःखद समाचार को सुनकर बेलूर की ओर दौड़ीं। रात्रि दो बजे तक गुरु के पास बैठकर उनके शव को पंखा झलती रहीं।

वेदमंत्रों के बीच विशाल जनसमूह के साथ, स्वामी जी के पार्थिव शरीर को गंगा किनारे ले जाया गया। वहीं उनका दाह-संस्कार हुआ। एक बार स्वामी जी के निर्वाण-दिवस पर किसी ने भगिनी निवेदिता से पूछा, "विवेकानन्द कौन थे, समाज सुधारक या धर्मगुरु?" भगिनी निवेदिता ने उत्तर दिया, "वह हमारे राष्ट्रपुरुष थे। उनकी श्वांस-श्वांस में एक ही इष्टदेवी का भक्तिभाव विभोर होकर मंत्रोच्चरित होता था, और वह था जगज्जननी भारत माँ।"

## स्वाधीनता संघर्ष में भगिनी

अपने गुरु स्वामी विवेकानन्द की भाँति स्वामी जी की मृत्यु के पश्चात् भी भगिनी निवेदिता ने व्यावहारिक वेदान्त को अपने जीवन का आधार बनाया। भारत के विभिन्न नगरों में भाषण देकर भारतीयों की राष्ट्रीय भावनाओं को उद्दीप्त किया। विभिन्न समाचार-पत्रों में छद्म नाम से लेख लिखकर उन्होंने देश व समाज को जागृत किया। प्रारम्भ में भगिनी निवेदिता को विश्वास था कि भारत तथा ब्रिटेन के संबंध

अच्छे हो सकते हैं, परन्तु ब्रिटिश सरकार के सतत अत्याचारों से उनकी ब्रिटिश शासन के प्रति रही सही सहानुभूति भी समाप्त हो गई थी।

स्वामी विवेकानन्द की मृत्यु के पश्चात् निवेदिता के बढ़ते हुए राष्ट्रप्रेरक विचारों से रामकृष्ण मिशन के सञ्चालकों को आशंका हुई कि कहीं इससे मिशन पर कोई संकट न आ जाये, अतः भगिनी निवेदिता ने बेलूर मठ से अपना संबंध विच्छेद कर लिया।

भगिनी निवेदिता के भारत आगमन से उनके निधन के समय (28 जनवरी, 1898-13 अक्टूबर, 1911) भारत में दो ब्रिटिश वायसराय रहे— लॉर्ड कर्ज़न (George Nathaniel Curzon) तथा लॉर्ड मिंटो (The Earl of Minto)। लॉर्ड कर्ज़न भारत में सात वर्ष (1899-1905) तक रहा था। वह पक्का साम्राज्यवादी तथा अहंकारी था। उसने भारत आते ही यहाँ के अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे लोगों में एक 'भय तथा गर्व'[1] का मिला-जुला भाव जगाया था। प्रारम्भ में लगता था कि वह भारतीय प्रशासन की कुछ उलझी हुई समस्याओं का निराकरण करेगा, परन्तु उसने आकर अनेक नवीन समस्याओं को जन्म दिया था। श्री गोपाल कृष्ण गोखले (1866-1915)-जैसे उदारवादी काँग्रेस-नेता ने उसके शासन की तुलना औरंगज़ेब[2] से की थी। वह रूस के ज़ार[3] की भाँति माना जाता था।

भगिनी निवेदिता की लॉर्ड कर्जन से पहली टक्कर, उसके राष्ट्रविरोधी क़ानूनों के विरोध में हुई। वह दहाड़ी शेरनी की भाँति कर्ज़न के विरुद्ध खड़ी हो गयीं। उन्होंने लॉर्ड कर्ज़न को 'झूठा व्यक्ति' कहा। उन्होंने कर्ज़न के इण्डियन युविर्सिटीज़ एक्ट-1904 का घोर विरोध किया जिसे भारतीयों ने जुल्म, ज़िद तथा ज़बरदस्ती कहा था। भारत की आर्थिक दुर्दशा के लिए निवेदिता ने लॉर्ड कर्ज़न और ब्रिटिश साम्राज्य को दोषी ठहराया था।[4]

इसी भाँति भगिनी निवेदिता ने कर्ज़न के 11 फरवरी, 1905 को कोलकाता

1. *अर्ल ऑफ़ रोनाल्डशे : द लाइफ़ ऑफ़ कर्ज़न*, भाग एक (लन्दन 1928), पृ 294-96
2. गृह विभाग (पब्लिक ए) भारत सरकार, कार्यवाही, मार्च 1906, नृं 5-8
3. *द ट्रिब्यून*, 18 अप्रैल, 1905, एसृ सीृ मित्तल, 'फ्रीडम मूवमेन्ट इन पंजाब' (1905-1929) दिल्ली, 1977, पृ 29; राणा प्रताप सिंह, *भगिनी निवेदिता* (1967) पृ 117; *द कम्पलीट वर्क्स ऑफ सिस्टर निवेदिता*, भाग-4, पृ 473-503
4. *द ट्रिब्यून*, 18 फरवरी, 1905; *द कम्पलीट वर्क्स ऑफ़ सिस्टर निवेदिता*, भाग-4, पृ 473-503



विश्वविद्यालय में दिए गए दीक्षांत समारोह पर उसके द्वारा भारतीयों के चरित्र तथा संस्कृति के संबंधों में दिए गए विचारों का कड़ा प्रतिवाद किया था। वस्तुतः कर्ज़न का भाषण भावनाओं से निम्न, तर्कों से खोखला, तथ्यों से ग़लत तथा भावनाओं से नदारद था।[1] इसका स्वर भारतीयों के बारे में पहले कहे गए उपयोगितावादी जेम्स मिल तथा लॉर्ड मैकाले के कठोर शब्दों को स्मरण करानेवाले थे।[2]

लॉर्ड कर्ज़न की 20 जुलाई, 1905 को बंग-भंग की घोषणा से भगिनी निवेदिता अत्यधिक परेशान हुई थीं। उन्होंने इसे बंगाल के 'भद्रलोक' में बम-विस्फोट[3] की भाँति लिया था। इसे तत्कालीन नौकरशाही शासन की सभी निकृष्ट विशेषताओं का प्रदर्शन करनेवाला[4] कहा गया था। इसने भारत के उदारवादियों के विश्वास को भी हिला दिया था।[5] बंग-भंग के विरोध में भगिनी निवेदिता क्रान्तिकारियों की अग्रश्रेणी में थीं। उन्होंने बंग-भंग के प्रश्न पर स्थान-स्थान पर भ्रमणकर भारतीयों को जागृत किया। इसके विरोध में जो बंगाल में पहली क्रान्तिकारी परामर्श समिति बनी, निवेदिता उसकी सदस्या थीं। इसके साथ ही वह परमार्थ मित्र की गुप्त संस्था से भी जुड़ी थीं। स्वामी सदानन्द, भगिनी निवेदिता तथा अरविन्द घोष (1872-1950) उसके कार्यों का धन तथा अन्य साधनों को जुटाने में सहयोग करते रहते थे।[6] वास्तव में भगिनी निवेदिता ही क्रान्तिकारी कार्यों के लिए बड़ौदा से प्रिंसिपल (बाद में महर्षि) अरविन्द को खींच लाई थीं।[7] *'युगान्तर'* (*'Yugantar'*) पत्र के प्रारम्भ करने में उसकी सम्पूर्ण योजना भगिनी निवेदिता के घर ही बनी थी। भगिनी निवेदिता का घर राष्ट्रवादियों तथा क्रान्तिकारियों का केन्द्र बन गया था। *'वन्दे मातरम्'* (*'Bande Mataram'*) पत्र को लोकप्रियता प्रदान करने में भगिनी निवेदिता का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण योगदान था। भगिनी निवेदिता ने देश के कुछ अन्य नेताओं की भाँति काँग्रेस के उदारवादियों तथा राष्ट्रवादियों में परस्पर तालमेल बिठाने की कोशिश की थी। उनकी भेंट लोकमान्य

1. *द ट्रिब्यून*, 21 फरवरी, 1905
2. एसृ सीृ मित्तल, पूर्वोद्धृत, पृ 30, *द पंजाबी*, 24 अप्रैल, 1905
3. एसृ एनृ बनर्जी, *ए नेशन इन मेकिंग* (लन्दन, 1925), पृ 189
4. गृह विभाग (पब्लिक ए) भारत सरकार, मार्च 1906, कार्यवाही नृं 5-8
5. पट्टाभि सीतारमैया, *हिस्ट्री ऑफ़ द काँग्रेस* (1885-1935), भाग 1 (दिल्ली 1969), पृ 1
6. नेमई साधन बोस, *द इण्डियन नेशनल मूवमेंट : एन आउटलाइन्स* (कोलकाता, 1965), पृ 65
7. डॉ॒ हरवंशलाल ओबराय, पूर्वोद्धृत, भाग 2, पृ 198-99

तिलक से भी हुई थी। परन्तु 1907 में काँग्रेस की सूरत फूट का लाभ, ब्रिटिश सरकार ने राष्ट्रवादियों के दमन के रूप में, भरपूर उठाया था।

भगिनी निवेदिता ने बिना किसी भय के भारत के क्रान्तिकारियों का साथ दिया। उन्होंने अरविन्द घोष से कोलकाता में क्रान्तिकारी आन्दोलन चलाने तथा उसका नेतृत्व करने का अनुरोध किया था। अरविन्द घोष ने 1906 में *'वन्दे मातरम्'* पत्र का संपादन कर राष्ट्रीय चेतना को जगाया। उदाहरण के लिए पत्र के एक अंक[1] में उन्होंने लिखा, 'हिंसा का हिंसा से सामना करना, अन्याय की पोल खोलना और उसका विरोध करना, अत्याचार के आगे सिर झुकाने से इनकार करना, छल-कपट और विश्वासघात के गड्ढों को दूर करना, बहिष्कार और स्वदेशी को प्रोत्साहन देना, *वन्दे मातरम्* की नीति के मुख्य फलक हैं।' उन्होंने देश के नवयुवकों को अर्ज़ी, प्रार्थना तथा याचिका की प्रक्रिया को विषैला धोखा कहा।[2] इससे पूर्व अरविन्द ने उदारवादी काँग्रेसियों की आलोचना करते हुए लिखा था, 'मैं अब काँग्रेस के बारे में यह कहना चाहता हूँ कि उनके लक्ष्य ग़लत हैं और उनकी प्राप्ति के लिए वह जिस भावना से चलती है, वह ईमानदारी और मन की भावना के अनुकूल नहीं है। उसने जिन तरीकों को चुना है, वे सही तरीके नहीं, और जिन नेताओं में वे विश्वास रखती है, वे नेता बनने योग्य नहीं हैं। संक्षेप में हम इस वक़्त उन अंधों की तरह हैं जिनका नेतृत्व यदि अंधे नहीं तो काने ज़रूर करते हैं।'[3] *वन्दे मातरम्* में छपे कुछ लेखों के कारण 1907 में उन पर राजद्रोह का मुकदमा भी चलाया गया, लेकिन प्रमाण न मिलने पर एक मास बाद छोड़ दिया गया था।

श्रीअरविन्द घोष भगिनी निवेदिता की पुस्तक *'काली द मदर'* से अत्यधिक प्रभावित थे। उसी के आंशिक प्रभाव से उन्होंने सन् 1905 में *'भवानी मन्दिर'* (*Bhawanai Mandir*) की रचना की थी, जिसमें भवानी की पूजा को, शक्ति के रूप में प्रस्तुत किया गया है।[4]

भगिनी निवेदिता ने कोलकाता के अपने घर में अनेक क्रान्तिकारियों को आश्रय दिया था। वह निर्भीक होकर क्रान्तिकारियों के बीच कार्य करती थीं। इससे

1. एमृ पीृ पण्डित, *श्रीअरविन्द* (नयी दिल्ली 1985), पृ 94
2. एसृ सीृ मित्तल, *काँग्रेस : अंग्रेज़-भक्ति से राजसत्ता तक* (नयी दिल्ली 2011), पृ 46
3. विपिन बिहारी मजूमदार व भक्त प्रसाद मजूमदार, *काँग्रेस एण्ड कांग्रेसमैन इन प्री-गाँधियन इरा (1885-1917)*, (कोलकाता, 1967), पृ 50-51
4. नेमई साधन बोस, पूर्वोद्धृत, पृ 65



शीघ्र ही वह ब्रिटिश सरकार की आँख की किरकिरी बन गयीं। परन्तु वह और अधिक उत्साह से क्रान्तिकारी गतिविधियों में लग गयीं। उनका स्कूल भारत की राष्ट्रीयता का केन्द्र बन गया। *'वन्दे मातरम्'* स्कूल की प्रार्थना का मुख्य अंग बन गया।

भगिनी निवेदिता ने क्रान्तिकारी उल्लास दत्त को प्रख्यात रसायनशास्त्री आचार्य प्रफुल्ल चन्द्र राय (1861-1944) की प्रयोगशाला में बम बनाना सीखने के लिए भेजा था। एक अन्य क्रान्तिकारी हेमचन्द्र को फ्रांस और इटली भेजा ताकि इसकी निर्माण-विधि का अध्ययन किया जा सके।[1]

अपनी क्रान्तिकारी गतिविधियों के कारण भगिनी निवेदिता भारत के वायसराय लॉर्ड मिंटो के क्रोध का शिकार भी बनीं। यह उल्लेखनीय है कि इससे पूर्व लेडी मिंटो (Mary Caroline Grey : 1858-1940) का उनके कन्या-विद्यालय आना हुआ तथा उसके बाद भगिनी निवेदिता का वायसराय के घर आना होता रहता था। ब्रिटेन के भावी प्रधानमंत्री जेम्स रैम्जे मैक्डोनाल्ड (James Ramsay MacDonald : 1931-1935) भी कन्या-विद्यालय आए थे तथा भारत में महिलाओं के शिक्षा-क्षेत्र में निवेदिता के कार्यों की प्रशंसा की थी। सन् 1907 से दो वर्षों के लिए निवेदिता को भारत से जाना पड़ा था। परन्तु वह विदेश में शान्त नहीं रहीं। लन्दन में स्वामी विवेकानन्द के अनुज और प्रसिद्ध क्रान्तिकारी भूपेन्द्रनाथ दत्त (1880-1961) व अन्य क्रान्तिकारियों से उनकी भेंट हुई। निवेदिता ने कुछ व्याख्यान देकर उनके भोजनादि के साधन जुटाए थे।

जुलाई, 1909 में वह पुनः छद्म वेश में भारत पहुँच गई थीं। इस बीच 1908 में अरविन्द घोष को क्रान्तिकारियों के साथ संबंधों के आधार पर मई, 1908 से मई, 1909 तक अलीपुर जेल में रखा गया था। ऐसा माना जाता है कि जेल से छूटने के पश्चात् ब्रिटिश सरकार ने उन्हें पुनः पकड़ने की योजना बनाई थी। योजना को असफल करने में मुख्य भूमिका भगिनी निवेदिता की थी।[2] संयोग से इसकी जानकारी लेडी मिंटो से भगिनी निवेदिता को उनके घर से मिल गई थी जो अनजाने में लेडी मिंटो ने भगिनी निवेदिता को बातों में दे दी थी। भगिनी निवेदिता से इसकी

1. बालमुकुन्द त्रिवेदी, 'लोकसेविका भगिनी निवेदिता', *जाह्नवी*, फरवरी, 2009, पृ 72
2. एसृ सीृ मित्तल, *राष्ट्रीय चैतन्य के प्रकाश में भारतीय स्वाधीनता संघर्ष* (नयी दिल्ली 2012), पृ 72

शीघ्र-से-शीघ्र जानकारी श्रीअरविन्द को मिल गई थी। अतः 04 अप्रैल, 1910 को अरविन्द घोष पहले भारत में फ्रांसीसी-क्षेत्र चन्दरनगर और फिर पाण्डिचेरी चले गए थे। संक्षेप में भगिनी निवेदिता का श्रीअरविन्द के जीवन-निर्माण में महती योगदान रहा, विशेषतः पहले शिक्षाविद् से क्रान्तिकारी-गतिविधियों की ओर मोड़ने तथा बाद में आध्यात्मिकता की ओर जाने देने में। संक्षेप में वह श्रीअरविन्द की राजनीतिक राष्ट्रीयता से आध्यात्मिक राष्ट्रीयता की ओर अग्रसर करने में सर्वाधिक सहायक थीं। स्वयं श्रीअरविन्द ने भगिनी निवेदिता के बारे में लिखा, 'वह क्रान्तिकारी नेताओं में से एक थीं। वह लोगों के सम्पर्क में आने के लिए इधर-उधर बहुत से स्थानों पर घूमीं। वह एक खुली क़िताब थीं और हरेक को क्रान्ति के बारे में खुलकर बोला करती थीं। वहाँ कुछ लुका-छिपी न थी।'[1]

प्रसिद्ध क्रान्तिकारी श्री रासबिहारी घोष (1845-1921) ने भगिनी निवेदिता के राष्ट्रीय योगदान के बारे में लिखा, 'एक बात, मैं जिसे पूरे विश्वास के साथ कह सकता हूँ, वह यह है कि आज के दिन हमें जीवन में राष्ट्रीयता के अंकुर फूटते दिखाई देते हैं, तो भारी मात्रा में उसका श्रेय भगिनी निवेदिता की शिक्षाओं को जाता है।'

## रात्रीय महापुरुषों के संग

भगिनी निवेदिता ने न केवल राष्ट्रीय जागरण तथा चेतना को जाग्रत् किया, बल्कि उसके साथ ही उनकी तत्कालीन भारत के प्रसिद्ध नेताओं से भी भेंट हुई। इतना ही नहीं, उन्होंने उनके अधिकारों के लिए संघर्ष भी किया। इसमें महर्षि अरविन्द के अतिरिक्त सर्वश्री जगदीश चन्द्र बसु, विपिन चन्द्र पाल, लोकमान्य बालगंगाधर तिलक तथा महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर विशेष उल्लेखनीय हैं।

**श्री जगदीश चन्द्र बसु (1858-1917)**[2]– भारत के प्रख्यात अंतर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक श्री जगदीश चन्द्र बसु, जिनके बारे में फ्रांस के महान् लेखक रोमां रोलां (Romain Rolland : 1866-1944) ने 'एक नये विश्व का आविष्कारक; ब्रिटेन के प्रसिद्ध साहित्यकार जॉर्ज बर्नार्ड शॉ (George Bernard

1. एमृ पीृ पण्डित, पूर्वोद्धृत, पृ 64; एसृ सीृ मित्तल, *भारत का स्वाधीनता संघर्ष*, पृ 71
2. एसृ सीृ मित्तल, 'पौधों में जीवन के व्याख्याता ऋषितुल्य जगदीश चन्द्र बसु', *पाञ्चजन्य*, 04 दिसम्बर, 2011



Shaw : 1856-1950) ने अपनी प्रेमपूर्ण शैली में निम्नतम शरीरविज्ञान से उच्चतम शरीरविज्ञान-विशेषज्ञ'; महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर (1861-1941) ने वैज्ञानिक के साथ 'साहित्यिक प्रतिभा से युक्त' तथा अल्बर्ट आइंस्टीन (Albert Einstein : 1879-1955) ने अपनी श्रद्धा व्यक्त करते हुए कहा था कि इस महापुरुष की प्रतिमा संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रांगण में स्थापित होनी चाहिए। जगदीश चन्द्र बसु ने अपने आविष्कार को अपने समय से इतना आगे बढ़ाया कि उस समय उनका सम्यक् मूल्यांकन नहीं हो सका।[1]

जगदीश चन्द्र बसु ने वैज्ञानिक क्षेत्र में कई अनुसन्धान किए थे। उन्हें 1896 में लन्दन विश्वविद्यालय से 'डॉक्टर ऑफ सायंस' की उपाधि मिली थी। भगिनी निवेदिता से उनका सम्पर्क 1898 में ही हो गया था। जगदीश चन्द्र बसु के परिवार की कन्याएँ भी निवेदिता के विद्यालय में पढ़ती थीं। 1898 में वह श्रीमती सारा बुल के साथ बसु से मिलने उनके घर गई थीं। उस समय वह 'रिस्पांस ऑफ़ लिविंग एण्ड नॉन लिविंग' पर अनुसन्धान कर रहे थे। अगस्त, 1900 में अंतर्राष्ट्रीय भौतिकी परिषद् ने पेरिस प्रदर्शनी में बसु को निमन्त्रित किया था। उन्होंने भारत सरकार की ओर से सम्मेलन में भाग लिया तथा अपना शोध-पत्र पढ़ा। उस समय स्वामी विवेकानन्द व भगिनी निवेदिता भी वहीं थे। परिषद् ने उनके पत्र की बड़ी प्रशंसा तथा सराहना की। स्वामी विवेकानन्द व भगिनी निवेदिता उनके चुम्बकीय व्यक्तित्व से बड़े प्रभावित हुए थे। उन्होंने भावविभोर हो जगदीश चन्द्र बसु का अभिनन्दन किया।

जब बसु पेरिस से लौटे तो बीमार हो गये। विम्बलडन में उनकी शल्य-चिकित्सा हुई। इसके बाद भगिनी निवेदिता के ही घर में सेवा-सुश्रूषा की गयी। बाद में श्रीमती अबला बसु बीमार हो गईं तो उनकी भी सेवा वहीं पर की गयी।

दिनांक 10 मई, 1901 को लन्दन के रॉयल सोसायटी भवन में जगदीश चन्द्र बसु ने ब्रिटेन के वैज्ञानिकों के समक्ष अपनी खोजों का प्रयोगशाला में प्रदर्शन किया। उन्होंने विश्व के वैज्ञानिकों को दिखलाया कि पौधों तथा धातुओं में संवेदना होती है। रॉयल सोसायटी (The Royal Society of London for Improving Natural Knowledge) के वैज्ञानिक आश्चर्यचकित थे। परन्तु पराधीन भारत के

1. *इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका*, 1945 संस्करण

इस वैज्ञानिक की खोज को साम्राज्यवादी ब्रिटिश वैज्ञानिक पूरी तरह से मानने को तैयार न थे। अतः उनका शोध-लेख छापने से मना कर दिया गया। इस घटना से जगदीश चन्द्र बसु जरा भी विचलित नहीं हुए, परन्तु भगिनी निवेदिता बहुत क्षुब्ध हुईं। उन्हें लगा कि बसु को ब्रिटेन में वह सम्मान नहीं दिया जाएगा जो योग्यता के आधार पर उन्हें दिया जाना चाहिए था, और तब से शुरू हुआ 'बसु युद्ध'। भगिनी निवेदिता तन-मन से बसु के शोध-पत्र के प्रकाशन, मुद्रण तथा अन्य व्यवस्थाओं में लग गयीं। 1902 में बसु का पहला ग्रन्थ *'रिस्पॉन्स ऑफ़ द लिविंग एण्ड नॉनलिविंग'* (*Response in the Living and Non-living*) प्रकाशित हुआ। आख़िरकार रॉयल सोसायटी ने उन्हें मान्यता दी। उनके 1900 में लिखे लेख को भी प्रकाशित किया। अतः इन सबके प्रकाशन तथा वित्तीय व्यवस्था में भगिनी निवेदिता ने पूरा योगदान दिया। भारतीय इतिहास में सम्भवतः यह पहला उदाहरण है जब किसी विदेशी महिला ने किसी भारतीय को सम्मान दिलाने में अपनी पूरी शक्ति लगा दी हो।

**श्री बिपिन चन्द्र पाल ( 1858-1932 )–** प्रसिद्ध राष्ट्रवादी नेता थे जो बाद में ब्रिटिश प्रकोप का शिकार बने थे। उनकी राष्ट्रीय भावना का उद्‌भव राजनारायण बसु (1826-1899), नवगोपाल और उनके हिंदू-मेलों से हुआ था। बंकिमचन्द्र चट्‌टोपाध्याय (1838-1894) और उनकी बांग्ला-पत्रिका *'बंगदर्शन'* (वङ्गदर्शन, 1872 से प्रारम्भ) से वे बड़े प्रभावित हुए थे। उन्होंने *'न्यू इण्डिया'* (*New India*) नामक एक साप्ताहिक पत्र भी निकाला था। महर्षि अरविन्द व जगदीश चन्द्र बसु की भाँति जहाँ से अंग्रेज़ अथवा अमेरिकी द्वारा भारत एवं भारतीयता का विरोध होता, वहाँ निवेदिता उनके विरुद्ध खड़ी हो जाती थीं। भगिनी निवेदिता की एक घटना उल्लेखनीय है। अमेरिका में जब विपिन चन्द्र पाल एक स्थान पर भाषण दे रहे थे, एक श्रोता ने बीच में ही खड़े होकर पाल को अपमानजनक ढंग से कहा, "मिस्टर पाल ! पहले अपने देश को स्वाधीन हो जाने दो। बाद में आकर भाषण देना।" इस घटना से निवेदिता की आस्थाओं को गहरा धक्का लगा। उनके मन में किञ्चित आशा थी कि भारत और ब्रिटेन मिलकर रह सकते हैं, परन्तु उनका अपना मार्ग भी स्पष्ट हो गया।

**लोकमान्य बालगंगाधर तिलक ( 1856-1920 )–** लोकमान्य तिलक, महात्मा गाँधी (1869-1948) के 1919 में सक्रिय राजनीति में आने से पहले भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन में सर्वोच्च नेता थे। वह पहले व्यक्ति थे जिन्होंने 1896 में



'स्वराज्य' शब्द का प्रयोग किया था।[1] सन् 1881 में उन्होंने मराठी में *'केसरी'* और अंग्रेज़ी में *'मराठा'* (*'Maratha'*)– इन दो साप्ताहिक पत्रों का प्रकाशन प्रारम्भ किया। वस्तुतः 1897 में अंग्रेज़ों ने लोकमान्य तिलक को गिरफ़्तार करने का षड्‌यंत्र रचा था। उन्होंने इसके लिए उनके पत्र *केसरी* में शिवाजी के बारे में प्रकाशित एक भाषण, जिसमें तिलक ने शिवाजी द्वारा अफ़ज़ल खाँ के वध को उचित बतलाया था, को आधार बनाया था। अंग्रेज़-सरकार ने उनपर मुकदमा चलाकर 14 सितम्बर, 1897 को डेढ़ वर्ष की सजा दी। उनकी इस गिरफ़्तारी की विश्वभर में चर्चा हुई और तभी से वह विख्यात हो गए थे। भगिनी निवेदिता ने उनका नाम सुना था तथा उनकी प्रसिद्ध रचनाओं को पढ़ा था। लोकमान्य तिलक ने हिंदू-धर्म की परिभाषा देते हुए इसे वेदों में विश्वास तथा पूजा के विभिन्न मार्ग बतलाया था।[2] लोकमान्य तिलक 1901 में स्वामी विवेकानन्द के बेलूर मठ भी गए थे। लोकमान्य तिलक से भगिनी निवेदिता की पहली भेंट 1905 में हुई थी। इस भेंट पर निवेदिता ने कहा था[3] "श्रीमान् तिलक, अब तक हम आपको वेद-संबंधी *'ओरियन'* (*'The Orion'*, 1893) तथा *'द आर्कटिक होम इन वेदाज़'* (*'The Arctic Home in the Vedas'*, 1903) नाम से जगतप्रसिद्ध पुस्तकों द्वारा जानते थे, परन्तु आज मुझे व्यक्तिगत रूप से आपसे भेंट करके बहुत हर्ष हुआ है। आज का दिन अवश्यमेव स्मरणीय और मेरे लिए एक हर्षपूर्ण दिन है जिसे मैं जीवन में कभी न भूलूँगी।" परन्तु इसके पश्चात् उनकी तिलक से भेंट न हुई, क्योंकि निवेदिता को 1907 में इंग्लैण्ड जाना पड़ा था।

**महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ( 1861-1941 )–** महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर को तीन का संयोग[4] बतलाया गया है, ये हैं कवि, दार्शनिक तथा देशभक्त (poet, philosopher and patriot)। अपने कथनीय लेख[5] में उन्होंने अपना पालन-पोषण क्रान्तिकारी तथा हलचलों से परिपूर्ण बतलाया है। भगिनी निवेदिता के साथ उनका सम्पर्क तभी से आया जब निवेदिता ने अपना कन्या-विद्यालय कोलकाता में खोला था। रवीन्द्रनाथ ठाकुर निवेदिता के जीवन से बड़े प्रभावित थे।

1. धनंजय कीर, *लोकमान्य तिलक : फादर ऑफ़ द फ्रीडम फाइटर* (मुम्बई, 1959) पृ 117
2. *वही*, पृ 171
3. इन्द्र विद्यावाचस्पति, *लोकमान्य तिलक और उनका युग* (नयी दिल्ली 1963), पृ 131-132
4. डॉ॰ पी॰ नागराजराव 'टैगोर : द ग्रेट ह्यूमिन्स्ट' *भवन्स जर्नल*, 30 अप्रैल, 1961
5. रवीन्द्रनाथ टैगोर, *द रिलीजन ऑफ़ ए अनरेस्ट* (कोलकाता, 1953), पृ 7

वस्तुतः रवीन्द्रनाथ ठाकुर के विश्व में सर्वाधिक प्रसिद्ध उपन्यास *'गोरा'* [1] (1910) की चरित्र-नायिका भगिनी निवेदिता ही हैं। रवीन्द्रनाथ ने भारतीय शिक्षण पर बल दिया था। एक बार रवीन्द्रनाथ जब अपनी बहिन की पुत्री को अंग्रेज़ी-शिक्षण देने चाहते थे, भगिनी ने उनसे पूछा था, "ऐसा क्यों? ठाकुर-परिवार में पलनेवाली बालिका को मेम क्यों बनाना चाहते हैं?" इस पर रवीन्द्रनाथ ने कहा, "अंग्रेज़ी-भाषा की उपयोगिता तथा विशिष्टता के कारण।" इस पर भगिनी निवेदिता ने पुनः कहा, "विदेशी शिक्षा के कारण अपनी राष्ट्रगत विशेषताएँ समाप्त हो जाती हैं।" अतः शिक्षा के क्षेत्र में भगिनी निवेदिता उनकी मार्गदर्शिका बनीं। शिक्षा के बारे में उनका दृष्टिकोण पूर्णतः राष्ट्रीय तथा मानवतावादी था। जिस प्रकार माँ के दूध पर पलनेवाला बालक अधिक स्वस्थ और बलवान् होता है, उसी प्रकार मातृभाषा में पढ़ने से मन और मस्तिष्क अधिक दृढ़ होते हैं।[2]

महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने भगिनी निवेदिता के साथ मिलकर 1905 में बंग-भंग विरोधी आन्दोलन में बढ़-चढ़कर भाग लिया था। स्वदेशी तथा स्वराज्य-आन्दोलन का पूरा समर्थन किया था। 1905 में बंग-भंग के विरुद्ध पहली परामर्श-समिति में भगिनी निवेदिता तथा महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने भाग लिया था। इसी बैठक में आगामी 16 अक्टूबर को 'राष्ट्रीय शोक दिवस' मनाने का निश्चय किया गया था।[3]

इतना ही नहीं, कला के क्षेत्र में भगिनी निवेदिता, महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर की मार्गदर्शिका तथा प्रेरक रहीं। एक बार निवेदिता ने महाकवि से आग्रह किया कि वह भारत का चित्र बनायें। ठाकुर बोले, "जिसका स्वरूप देखा ही नहीं, उसका चित्रांकन कैसे होगा?" भगिनी ने तुरन्त उत्तर दिया कि यह विषय भक्ति का है। भारत, यह कंकड़-पत्थर का ढेर नहीं है, यह जो जगज्जननी माता है। सारा समाज उसकी सन्तान है। उस पुनीत माँ का स्मरण करें, चित्र चमक उठेगा।" भावविभोर ठाकुर ने भारत माँ का चित्र बनाया। उसे देखकर भगिनी निवेदिता बोल उठीं, "इस चित्र में हमें वह वस्तु प्राप्त होती है जिसके लिए भारतीय कला वर्षों से प्रतीक्षा कर रही है।" निवेदिता ने उस चित्र को एक प्रसिद्ध मासिक पत्रिका में

1. रवीन्द्रनाथ टैगोर, *गोरा* (अनुवादक : धन्य कुमार जैन)
2. एसृ सी मित्तल, *भारत का स्वाधीनता संघर्ष*, पृ 84
3. इन्द्र विद्यावाचस्पति, पूर्वोद्धृत, पृ 121



छपवाया। महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने भगिनी निवेदिता को सही भावों से 'लोकमाता' (लोगों की माता) कहा। महाकवि ने निवेदिता के सभी ग्रन्थों का अध्ययन किया। भगिनी निवेदिता-रचित एक पुस्तक की भूमिका में उन्होंने लिखा[1], 'भगिनी निवेदिता ने भारतीय जीवन के महत्त्वपूर्ण सत्यों को सबके सामने रखा।'

**देशबन्धु चितरंजन दास ( 1870–1925 )–** देशबन्धु चितरंजन दास भारत के उस समय के एक जाने-माने वक़ील थे। साथ ही राष्ट्र के प्रमुख नेता भी। अलीपुर-केस में बड़ी मेहनत के पश्चात् उन्होंने अरविन्द घोष को जेल से छुड़ाया था। भगिनी निवेदिता ने उनके प्रारम्भिक राजनीतिक जीवन में दिशा देने में महत्त्वपूर्ण योगदान किया। 16 अक्टूबर, 1905 को उन्होंने दार्जिलिंग में भाषण देते हुए स्वदेशी-आन्दोलन की महत्ता को स्वीकार किया था। वह इसके लिए न केवल राष्ट्रीयतापरक बल्कि एशियाई संघ बनाने की सोचने लगे थे। इस क्षेत्र में उन पर एक प्रसिद्ध जापानी कवि ओकाकुरा तथा भगिनी निवेदिता का बड़ा प्रभाव पड़ा था। वह ओकाकुरा (Okakura Kakuzō : 1862-1913) की पुस्तक *'द आइडियाज़ ऑफ़ द ईस्ट'* (*'The Ideas of the East'*, 1903) से बड़े प्रभावित थे।[2] भगिनी निवेदिता ने इस पुस्तक की भूमिका में लिखा, 'एशिया एक है। हिमालय तो केवल पूर्व की दो सशक्त सभ्यताओं– भारतीय और चीनी सभ्यताओं को अधिक लाने के लिए उन्हें अलग करता है।' अतः देशबन्धु को राजनीतिक तथा राष्ट्रीय दृष्टि देने में भगिनी निवेदिता का विशिष्ट योगदान रहा।[3]

## प्रेरणादायी ग्रन्थों की रचयिता

भगिनी निवेदिता व्यावहारिक वेदान्त की प्रचारिका होने के साथ एक प्रभावशाली लेखिका भी थीं। उन्होंने लगभग डेढ़ दर्जन ग्रन्थों की रचना की थी। इसमें उन्होंने भारतीय धर्म[4], संस्कृति, इतिहास, दर्शन, कला तथा भारत के प्रमुख तीर्थस्थानों पर प्रकाश डाला है। उन्होंने अधिकतर रचनाएँ अमेरिका तथा इंग्लैण्ड में रहने के काल

1. सिस्टर निवेदिता, *द वेब ऑफ़ इण्डियन लाइफ* (मूलतः प्रकाशित 1904, पुनर्प्रकाशित 1917) देखें, रवीन्द्रनाथ टैगोर द्वारा लिखित भूमिका); कालीकिंकर दत्त, *ए सोशल हिस्ट्री ऑफ़ माडर्न इण्डिया* (कोलकाता, 1975), पृ 382
2. हेमेन्द्रनाथ गुप्त, *देशबन्धु चितरंजन दास* (दिल्ली, 1960), पृ 12-21
3. *वही*, पृ 36-37
4. एफ़ जे अलेक्जेण्डर, *'द सिस्टर निवेदिता : हर इण्डियन आउटलुक'*, द मॉडर्न रिव्यू, फरवरी, 1912

(1907-1909) में लिखी हैं। उनके अनेक लेख उनकी मृत्यु के पश्चात् प्रकाशित हुए।

भगिनी निवेदिता की कुछ प्रमुख रचनाएँ हैं–

1. ***'Kali the Mother'*** (1900) *काली माँ*
2. ***'The Web of Indian Life'*** (1904) *भारतीय जीवन का ताना-बाना*
3. ***'Cradle Tales of Hinduism'*** (1907) *हिंदू-धर्म की बाल कथायें*
4. ***'An Indian Study of Love and Death'*** (1908) *प्रेम और मृत्यु का एक भारतीय अध्ययन*
5. ***'Select essays of Sister Nivedita'*** (1911 ) *भगिनी निवेदिता के कुछ चुने हुए निबन्ध*
6. ***'Studies from an Eastern Home'*** (1913) *पूर्व के एक परिवार के बीच अध्ययन*
7. ***'Myths of the Hindus & Buddhists'*** (1913) *हिंदुओं और बौद्धों के मिथक*
8. ***'Footfalls of Indian History'*** (1915) *भारत इतिहास के पथचिह्न*
9. ***'Religion and Dharma'*** (1915) *रिलीजन और धर्म*
10. ***'The Civic & National Ideals'*** (1929) *नागरिक और राष्ट्रीय आदर्श*
11. ***'The Master as I Saw Him'*** (1910) *मेरे गुरु : जैसा मैंने उन्हें देखा*
12. ***'Kedarnath and Badri Narayan : A Pilgrim's Diary'*** *केदारनाथ और बद्रीनारायण : एक तीर्थयात्री की डायरी*
13. ***'Lectures and Articles on Indian Art'*** *भारतीय कला पर भाषण तथा लेख*
14. ***'Hints on National Education in India'*** *भारत में राष्ट्रीय शिक्षा संबंधी सुझाव*
15. ***'Lambs among Wolves (Missionaries in India)'*** (1928) *भेड़ियों के बीच मेमने (भारत में मिशनरी)*
16. ***'Thoughts and Religion, On Political, economic and social Problems'*** *धर्म, राजनीति, आर्थिक तथा सामाजिक समस्याओं पर विचार*
17. ***'Notes of some Wanderings with the Swami Vivekananda'*** (1913) *एक यात्री की डायरी*



18. ***'Aggressive Hinduism'*** *उग्र हिंदुत्व*
19. ***'Siva and Buddha'*** *शिव और बुद्ध*

भगिनी निवेदिता द्वारा संस्थापित कन्या-विद्यालय अब **'रामकृष्ण शारदा मिशन सिस्टर निवेदिता गर्ल्स स्कूल'** के नाम से प्रसिद्ध है। इस विद्यालय ने निवेदिता की जन्मशताब्दी के अवसर पर उनकी समस्त रचनाओं को ***'The Complete works of Sister Nivedita'*** *('द कम्पलीट वर्क्स ऑफ़ सिस्टर निवेदिता')* शीर्षक से 5 खण्डों में प्रकाशित किया है। ये सभी रचनाएँ, जैसा कि शीर्षकों से भी ज्ञात होता है, विविध विषयों पर प्रकाश डालती हैं।

## एक महान् चिन्तक

निःसन्देह भगिनी निवेदिता ने अपने गुरु स्वामी विवेकानन्द के ध्येय तथा आदर्शों के अनुकूल अपने चिन्तन तथा विचारों को आगे बढ़ाया। उनका चिन्तन, वैदुष्य, स्वप्न, चेतन तथा अचेतन मन भारत और केवल भारत के लिए समर्पित था।

भगिनी निवेदिता ने अपनी रचनाओं द्वारा भारतीय चिन्तन तथा विचारों को उत्कृष्ट ढंग से प्रस्तुत किया। उदाहरणतः *'काली द मदर'* में स्वामी रामकृष्ण परमहंस तथा स्वामी विवेकानन्द की काली माँ को विश्व की सर्वोच्च देवी जगद्धात्री कहा।[1] इसी भाँति अपनी पुस्तक *'वेब ऑफ़ इण्डियन लाइफ'* में भारतीय नारी को एक माँ तथा पत्नी के रूप में चित्रित करते हुए उसे भारतीय संस्कृति तथा परम्पराओं की रक्षक तथा पोषक बतलाया। उन्होंने भारत के राष्ट्रीय ग्रन्थों, जाति-प्रथा तथा भारतीय जीवन के विभिन्न पहलुओं तथा विचारों पर प्रकाश डाला।

निवेदिता की रचनाओं में उनके धार्मिक चिन्तन पर *'रिलीजन एण्ड धर्म'* एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में हिंदू-धर्म तथा अन्य धर्मों के गुण-दोषों की ओर ध्यान आकृष्ट कराया गया है। भगिनी निवेदिता ने 'कर्तव्य-बोध' को धर्म बताया। मुक्ति के साथ व्यावहारिक धर्म के प्रति समन्वयात्मक दृष्टि अपनाने को कहा। भगिनी ने यूरोपीय तथा भारतीय समाज की कमियों की ओर संकेत करते हुए दोनों में समन्वय दृष्टि अपनाने को कहा।[2] उन्होंने आत्मसुधार की ओर ध्यान आकृष्ट करते हुए बतलाया कि यूरोप में किसी झाड़ू लगानेवाले को सार्वजनिक

1. रेखा मोदी (संपादित) *एक्वेस्ट फॉर रूट्स* (दिल्ली 1999), पृ 58-59
2. सिस्टर निवेदिता, रिलीजन एण्ड धर्म, पृ 1, *कम्पलीट वर्क्स ऑफ़ सिस्टर निवेदिता*, भाग 1

अधिकारों तथा कर्तव्यों का जो ज्ञान होता है, वह अपने (भारत के) बड़े-बड़े नेताओं तथा राजनीतिज्ञों को भी नहीं होता।[1] उन्होंने समयानुकूल संस्कारों को पुनः परिष्कृत करने का आह्वान किया।[2] भगिनी निवेदिता ने सामुदायिक प्रार्थना पर बहुत बल दिया। साथ ही यह भी कहा कि यह वर्नाकुलर भाषा में होनी चाहिये।[3] उन्होंने स्पष्ट किया कि सामूहिक प्रार्थना का विचार मूलतः यहूदी तथा इस्लामी संस्कृति में प्रथम उत्पन्न हुआ और आज भी यह इंग्लैण्ड के प्रोटेस्टेंट पंथ में दृष्टिगोचर होता दिखलाई देता है। उन्होंने इस बात पर बड़ा बल दिया कि पूजा-कार्य में सामुदायिक प्रार्थना का आज भी बड़ा महत्त्व है।

भगिनी निवेदिता ने बतलाया कि धर्म कोई अंधविश्वास, भय, मिथक नहीं है। यह जीवित विचार तथा विश्वास है। हिंदुत्व के वैशिष्ट्य को बतलाते हुए उन्होंने स्पष्ट किया कि इसमें शाश्वत सत्य के प्रति पूर्ण आस्था है। अनेक मिथक होते हुए भी उन पर कम आधारित है। सत्य के साक्षात्कार पर कोई विवाद नहीं है।

भगिनी निवेदिता ने अपने विश्वास को उग्र तथा आक्रामक हिंदुत्व के रूप में रखते हुए कहा कि भारतीय धर्म सन्देशवाहक बनकर बाहर जाये। उन्होंने हिंदू-धर्म को शौर्य तथा आत्मविश्वास का धर्म बतलाया तथा भाग्यवाद पर आश्रित न रहने को कहा।[4] उन्होंने कहा कि आत्मसुधार केवल सिद्धान्तों में नहीं बल्कि कृतित्व में हो। उन्होंने धर्म को एक महान् शक्ति बतलाया।[5]

भगिनी निवेदिता ने एक अन्य ग्रन्थ में हिंदू-धर्म तथा बौद्ध-मत के बारे में अन्तर स्पष्ट किया। उन्होंने बताया कि हिंदू एक सम्प्रदाय नहीं वरन् एक संश्लेषण है; एक पूजागृह नहीं अपितु एक धार्मिक विश्वविद्यालय है और बौद्धमत उसी संश्लेषण का एक भाग है।[6] उनके अनुसार बौद्ध-मत कभी भी भारत में धार्मिक संस्था नहीं बल्कि केवल एक धार्मिक व्यवस्था के रूप में रहा है[7] (Buddhism in

1. सिस्टर निवेदिता, रिलीजन एण्ड धर्म, *कम्पलीट वर्क्स ऑफ़ सिस्टर निवेदिता*, भाग 1, पृ 2
2. *वही*, भाग 1, पृ 6
3. *वही*, पृ 6
4. *वही*, पृ 49
5. *वही*, पृ 58
6. राणा प्रताप सिंह, *भगिनी निवेदिता* (लखनऊ, 1967), पृ 105
7. सिस्टर निवेदिता, *फुटफॉल्स ऑफ इण्डियन हिस्ट्री* (चेन्नई, 1932) देखें, अध्याय 'द रीलेशन बिटवीन बुद्धिज़्म एण्ड हिंदुइज़्म', पृ 159



India never consisted of a church but only of a religious order)। राष्ट्रीयता का विकास भारतीय लोगों की सामाजिक एकरूपतास्वरूप हिंदुत्व के जन्म से हुआ है, जिसे बुद्धमत ने वर्तमान तक विरासत के रूप में जीवित रखा है।[1] निवेदिता का मत है कि यद्यपि भारत में महान् चन्द्रगुप्त मौर्य ने राज्य स्थापित किया तथा एक ऐसी राजनीतिक एकता कायम की जिससे भारतीय राष्ट्रीयता का आगे भी विकास हो, तथापि सम्राट् अशोक तथा पीत वस्त्रधारी भिक्षुओं[2] ने भी राष्ट्रीयता के विकास में महत्त्वपूर्ण विकास तथा सहयोग स्थापित किया।

भगिनी निवेदिता ने पुनः लिखा कि बौद्धमत कोई सम्प्रदाय नहीं है बल्कि एक 'मोनेस्टिक ऑर्डर' (monastic order) है। पंथ कुछ को जोड़ते हैं परन्तु अनेक को अलग करते हैं।[3] भगिनी निवेदिता ने महात्मा बुद्ध को एक करुणावतार के रूप में माना है जिन्होंने प्रचलित पशु-बलि का विरोध किया। बुद्ध इस सन्दर्भ में राजा बिम्बिसार के दरबार तक पहुँचे तथा राजा से अपनी बातें स्वीकार करायीं।

भगिनी निवेदिता के अनुसार बुद्ध का काल परिवर्तन का काल था तथा यह विश्वास की शक्ति पर विजय थी।[4] उन्होंने बौद्ध-काल में हिंदू-धर्म के विभिन्न स्वरूप की भी चर्चा की तथा इनमें विकसित तथा परिवर्तित शिवपूजा के स्वरूप का विस्तृत वर्णन किया।[5] उन्होंने पुनः लिखा कि हिंदुत्व का जन्म एक व्यवस्था के रूप में नहीं, बल्कि एक चिन्तन की प्रक्रिया के रूप में हुआ, जिसमें बीते हुए प्रत्येक युग के गुणों के प्रगतिशील विकास को समाहित करने की क्षमता है।[6]

## इतिहास-विवेचन

भगिनी निवेदिता ने अपनी सर्वविख्यात पुस्तक *'फुटफॉल्स ऑफ़ इण्डियन हिस्ट्री'* (1915) में धर्म, संस्कृति, पर्यटन तथा इतिहास के विभिन्न विषयों को स्पर्श किया है। उन्होंने 'फुटफॉल्स' पर एक सुन्दर कविता भी की थी (देखें परिशिष्ट)। वह भारत के

1. सिस्टर निवेदिता, *फुटफॉल्स ऑफ इण्डियन हिस्ट्री* (चेन्नई, 1932) देखें, अध्याय 'द रीलेशन बिटवीन बुद्धिज़्म एण्ड हिंदुइज़्म', पृ 152
2. *वही*, पृ 153
3. *वही*, पृ 154
4. *वही*, पृ 155
5. *वही*, पृ 161
6. *वही*, पृ 163

गौरवमय अतीत की महान् प्रशंसक थीं।[1] इस ग्रन्थ में उनके दो-तीन प्रसिद्ध लेख[2] उनकी भारतीय इतिहास के प्रति गहन रुचि तथा खोज को बतलाते हैं। इसमें 'The History of India and its Study' ('द हिस्ट्री ऑफ इण्डिया एण्ड इट्स स्टडी'), 'Some Problems of Indian Research' ('सम प्रॉब्लम्स ऑफ़ इण्डियन रिसर्च') तथा 'The Rise of Vaishnavism under the Guptas' ('द राइज़ ऑफ़ वैष्णविज़्म अंडर दी गुप्त्स') अत्यधिक खोजपूर्ण तथा मार्गदर्शक है।

भगिनी निवेदिता ने विदेशी विद्वानों तथा इतिहासकारों के इस कथन को निर्मूल बताया कि 'भारतीयों का कोई इतिहास नहीं है'[3]। उन्होंने इस कथन का खण्डन किया कि भारत में इतिहास के निमित्त केवल काश्मीर की *राजतरंगिनी*, सिलोन के *दीपवंश* तथा *महावंश* और मुस्लिम-शक्ति स्थापित हो जाने पर 'रिकॉर्ड्स' के अलावा कोई इतिहास नहीं है। उन्होंने लिखा है कि भारत स्वयं एक विशाल दस्तावेज (Master Document) है जो साधनों से भरपूर है। घरों तथा परिवारों के दस्तावेज, जातियों की उत्पत्ति, वनवासी-परम्पराएँ, मगध से उच्च जातियों-परिवारों का आगमन, गौड़-राजधानी को हटाना, पाटलिपुत्र का पतन, सांस्कृतिक उत्थान, कलाओं का विकास आदि अनेक खोज के विषय तथा इनकी साधन-सामग्री उपलब्ध है।[4]

निवेदिता ने भारतीय इतिहास का उसके अतीत तथा उसके भविष्य से गहरा संबंध बतलाया है।[5] आज जो हम हैं, वह अतीत की देन है। वर्तमान, अतीत का टूटा अंश (the present is the leakage of the past) है। भविष्य हमारी प्रतीक्षा करता है कि अतीत की सामग्री की सुरक्षा करते हुए, भविष्य को समझने के लिए इसे जोड़ें।[6]

निवेदिता भारतीय इतिहास को समझने में यात्रा के महत्त्व पर बहुत बल देती हैं। इस सन्दर्भ में प्राप्त सामग्री अधूरी तथा विकृतिपूर्ण है।[7] उनका यह भी

1. कालीकिंकर दत्त, पूर्वोद्धृत, पृ 383
2. भगिनी निवेदिता के कुछ लेख 1912 व 1913 के *'मॉडर्न रिव्यू'* में छपे थे
3. भगिनी निवेदिता, फुटफॉल्स ऑफ़ इण्डियन हिस्ट्री, *द कम्पलीट वर्क्स ऑफ़ सिस्टर निवेदिता*, भाग 4, पृ 6, देखें, 'द हिस्ट्री ऑफ इण्डिया एण्ड इट्स स्टडी'
4. *वही*, पृ 6-15
5. *वही*, पृ 15
6. *वही*, पृ 15
7. *वही*, पृ 16



कथन है कि 'हम केवल वही न देखें जो सुखदायक हो, बल्कि सत्य को जानने के लिए वैज्ञानिक ढंग से तैयारी करें।' वह दृढ़तापूर्वक सत्य की खोज के लिए सर्वोत्तम वैज्ञानिक ट्रेनिंग को सर्वोत्तम फल मानती हैं।[1] उनका यह भी विचार था भारतीय इतिहास के अनुसन्धानों का आधार धार्मिक तथा आध्यात्मिक होना चाहिये।[2]

भगिनी निवेदिता ने एक दूसरे महत्त्वपूर्ण लेख 'सम प्रॉब्लम्स ऑफ़ इण्डियन रिसर्च' में भारतीय इतिहास की विकृतियों, इतिहास की विधि तथा इतिहास-लेखन की दिशा भी दी है। उनका विचार है कि भारतीय लोगों का पहला कार्य अपने इतिहास का पुनर्लेखन है।[3] साथ ही उनका मत है कि यह किसी एक व्यक्ति के द्वारा नहीं बल्कि विद्वानों के समूह अर्थात् भारतीय बौद्धिक समाज द्वारा लिखा हो।[4] कोई भी व्यक्ति भारत के विवादास्पद सत्य को नहीं जान सकता जब तक उसे भारत की भौगोलिक तथा उसके विस्तार का ज्ञान न हो, ताकि हमें पता चले कि हमारा कब विकास हुआ।

भगिनी निवेदिता ने अपने समकालीन ब्रिटिश इतिहासकार विन्सेंट आर्थर स्मिथ (Vincent Arthur Smith : 1848-1920) की पुस्तक *'द अर्ली हिस्ट्री ऑफ इण्डिया'* (*'The Early History of India*', 1904) की कटु आलोचना की तथा उसे रॉयल एशियाटिक सोसायटी (The Royal Asiatic Society of Great Britain and Ireland, 1824) के कार्यों का परिणाम बताया।[5] उन्होंने इसे विस्तृत तथा व्यापक बतलाते हुए अध्यात्महीन[6] (curiously unspiritual) कहा। उन्होंने आधुनिक भारत के विकास को जानने के लिए 400 ई से इतिहास को समझने का सुझाव दिया। उन्होंने गुप्तकाल को संस्कृत सीखने तथा साहित्य का पुनरुत्थान काल बताया।[7] उन्होंने पुराणों के काल के सन्दर्भ में स्मिथ की आलोचना की तथा भारतीय इतिहास को जानने में पुराणों का महत्त्व बतलाया।[8] वह भारतीय साहित्य में

1. भगिनी निवेदिता, फुटफॉल्स ऑफ़ इण्डियन हिस्ट्री, *द कम्पलीट वर्क्स ऑफ़ सिस्टर निवेदिता*, भाग 4, पृ 25, देखें, 'द सिटीज़ ऑफ़ बुद्धिज़्म'
2. *वही*, पृ 175, (देखें लेख 'प्रॉब्लम्स ऑफ़ इण्डियन रिसर्च')
3. *वही*, पृ 175
4. *वही*, पृ 175
5. *वही*, पृ 175
6. *वही*, पृ 176
7. *वही*, पृ 176-177
8. *वही*, पृ 179

*महाभारत* को एक राष्ट्रीय साहित्य के रूप में मानती हैं जिसमें एकता की पेचीदगी तथा एक केन्द्रीय शासन की वीर परम्परा है।[1]

भगिनी निवेदिता ने अपने लेख 'द राइज़ ऑफ़ वैष्णविज़्म अंडर द गुप्त्स' में वैष्णव-सम्प्रदाय के विभिन्न काल में भारत के विभिन्न प्रदेशों के योगदान का सूक्ष्म विश्लेषण किया। उन्होंने इसके संक्षिप्त स्वरूप को इतिहास की देन बताया।[2]

## एक महान् तीर्थयात्री

भगिनी निवेदिता की भारतभूमि के प्रति अगाध श्रद्धा तथा इसके तीर्थस्थानों के दर्शन की बड़ी इच्छा रहती थी। वह स्वामी विवेकानन्द के कई शिष्यों के साथ काश्मीर में अमरनाथ की यात्रा पर गई थीं। उन्होंने स्वयं भी भारत के विभिन्न पवित्र स्थलों की यात्रा की थी। वह हिंदुओं तथा बौद्धमत के अनेक तीर्थस्थलों पर गयीं। उन्होंने अपनी यात्रा में न केवल विभिन्न तीर्थस्थानों, बल्कि उनकी ऐतिहासिकता का भी वर्णन किया। उदाहरणतः उन्होंने धौली (भुवनेश्वर), ताम्रलिप्ती (तामलुप), पुरी का वर्णन किया। उन्होंने ताम्रलिप्ती तथा पुरी के प्राचीन बन्दरगाहों को ईसा पूर्व के, शताब्दियों पूर्व के सम्राट् अशोक के समय का 'लीवरपूल' कहा।[3] उन्होंने अपनी यात्राओं में हिंदुओं तथा बौद्धों के तीर्थस्थलों में संश्लेषण देखा। उदाहरणतः ब्राह्मणों के गया तथा बौद्धों के बोधगया; ब्राह्मणों के बनारस तथा बौद्धों के सारनाथ; एलीफेंट राजमहल के मन्दिर तथा कुछ दूरी पर कन्हेरी में बौद्धों का मठ आदि।[4] राजगीर (राजगृह) को उन्होंने 'एक प्राचीन बेबीलोन' कहा।[5] 'बिहार' नामक लेख में उन्होंने महात्मा बुद्ध से संबंधित स्थलों का वर्णन किया। अजन्ता का गुफाओं का उन्होंने विस्तृत वर्णन किया। इनमें 19वीं गुफा को उन्होंने विश्व में स्थापत्य-कला में एक महान् विजय बतलाया।[6] उन्होंने हिमालय पर्वत की श्रेणियों में बद्रीनाथ, केदारनाथ तथा गंगोत्री की यात्रा की। संक्षेप में इन यात्राओं द्वारा भारत का

1. भगिनी निवेदिता, फुटफॉल्स ऑफ़ इण्डियन हिस्ट्री, *द कम्पलीट वर्क्स ऑफ़ सिस्टर निवेदिता*, भाग 4, पृ 180, देखें, 'ए स्टडी ऑफ़ बनारस'
2. *वही*, पृ 205, विस्तार के लिए देखें लेख 'द राइज़ ऑफ वैष्णवाज अंडर द गुप्त्स', पृ 204-14
3. *वही*, पृ 27, देखें 'द सिटीज़ ऑफ बुद्धिज्म'
4. *वही*, पृ 31
5. *वही*, देखें, 'राजगीर : एन एंसियंट बेबीलोन', पृ 37
6. *वही*, देखें, 'द एंसियंट एब्बे ऑफ अजन्ता', पृ 67

काश्मीर की यात्रा पर, 1898
(बाएँ से) जोसेफिन मैक्लॉयड, श्रीमती ओले बुल, स्वामी विवेकानन्द एवं भगिनी निवेदिता

साक्षात्कार किया तथा सम्पूर्ण भारत में एक संश्लेषणात्मक स्वरूप में राष्ट्रीय एकता का दर्शन किया।

## प्राचीन साहित्य में अभिरुचि

भगिनी निवेदिता ने भारत के प्राचीन साहित्य के अध्ययन के अद्‌भुत रुचि दिखलायी। उन्होंने स्वयं अनेक ग्रन्थों की रचना की और लोगों को वेदोपनिषद् तथा पुराण-ग्रन्थों को पढ़ने के लिए प्रेरित किया। उन्होंने *रामायण* के अन्तिम भाग अर्थात् उत्तरकाण्ड को छोड़कर *महाभारत* से पूर्व का बताया। उन्होंने *महाभारत* को भारत की राष्ट्रीय गाथा बतलाया, लेकिन *रामायण* में भारतीय स्त्रीत्व-भारतीय चिन्तन में सीता को केन्द्रीय चित्र बतलाया। इन दोनों ग्रन्थों को भगिनी निवेदिता भारत की शिक्षाप्रद एजेंसियाँ मानती हैं[1]। उन्होंने समस्त उत्तर भारत में प्रचलित तथा वाचित गोस्वामी तुलसीदास की *श्रीरामचरितमानस* को अद्वितीय ग्रन्थ माना है।

## शिक्षाविद्

भगिनी निवेदिता ने शिक्षा के क्षेत्र को अपने जीवन में सर्वोच्च स्थान दिया। उन्होंने अपने गुरु स्वामी विवेकानन्द की इच्छानुसार कोलकाता में कन्या-विद्यालय खोलकर उसे न केवल साकार किया, बल्कि शिक्षा-क्षेत्र में उसे यशस्वी स्थान दिलाया। उन्होंने अध्यापक तथा विद्यार्थी— दोनों का मार्गदर्शन किया। उन्होंने विद्यार्थियों को स्वामी जी की भाँति कहा, "संघर्ष करो तथा तब तक न रुको जब तक लक्ष्य की प्राप्ति न हो।" उन्होंने यह भी माना कि अध्यापक कोई दूसरे की मदद नहीं कर सकता, परन्तु वह विद्यार्थी को स्वयं अपना मार्ग ढूँढ़ने के लिए प्रेरित कर सकता है।[2] भगिनी निवेदिता ने महिलाओं के सन्दर्भ में स्वामी विवेकानन्द के विचार व्यक्त करते हुए लिखा कि स्वामी जी का मत था कि वे आधुनिक विज्ञान को सीखें, परन्तु किसी भी अवस्था में अपनी आध्यात्मिकता के मूल्य पर नहीं।[3] डॉ॰ सर्वपल्ली राधाकृष्णन (1888-1975) ने एक बार कहा था, "जिन लोगों ने हमारे देशवासियों को अपनी संस्कृति की महानता से परिचित कराने का प्रयास किया है, उनमें निवेदिता का एक

1. सिस्टर निवेदिता, द क्रेडल टेल्स ऑफ़ हिंदुज़्म, भाग 1 : *द कम्पलीट वर्क्स ऑफ़ सिस्टर निवेदिता*, भाग 3
2. भगिनी निवेदिता, *रिलीजन एण्ड धर्म*, पृ॰ 70
3. सिस्टर निवेदिता, *द मास्टर एज आई शो हिम*, पृ॰ 347; स्वामी तथागतानन्द, *मेडीटेशन ऑफ़ स्वामी विवेकानन्द* (न्यूयॉर्क), पृ॰ 207



प्रमुख स्थान है। निवेदिता ने केवल नारी-शिक्षा ही नहीं, बल्कि सम्पूर्ण राष्ट्रीय शिक्षा को प्रभावी बनाने का प्रयास किया।" उन्होंने भारत में राष्ट्रीय शिक्षा-नीति के सन्दर्भ में सुझाव रखे[1] तथा शिक्षा में मातृभाषा को प्रमुखता दी।

## कला में क्रान्ति-सृजन

भगिनी निवेदिता का भारत की प्राचीन कला, विशेषतः बांग्ला-कला में क्रान्ति लाने में अग्रिम स्थान है। उन्होंने भारतीय कला को अत्यन्त प्रखर तथा भावात्मक दृष्टि से देखा। वह स्वयं अजन्ता, एलोरा, एलीफेन्टा तथा अन्य कलात्मक स्थानों पर गयीं। कला को वह एक साधना तथा भक्ति का स्वरूप मानती हैं। उन्होंने एक पत्र में लिखा, 'राष्ट्रीय कला का पुनरुज्जीवन मेरा सर्वप्रिय स्वप्न है। भारत को जब उसकी पुनः शक्तिप्राप्ति हो जाएगी, तब वह एक बार फिर बलशाली राष्ट्र बनने की राह पर जा खड़ा होगा।' उन्होंने भारतीय कलाकारों को अजन्ता, एलोरा की चित्रकला का गम्भीरता से अध्ययन करने के लिए प्रेरित किया। उन्होंने भारतीयों को पाश्चात्य कला की मानसिक गुलामी से मुक्त हो, कला में भारतीय गुणों का समावेश करने को प्रेरित किया। उन्होंने अनेक कलाकारों को प्रोत्साहित किया तथा आर्थिक सहायता भी दिलवायी।

भगिनी निवेदिता के आध्यात्मिक तथा राष्ट्रीयता से ओतप्रोत उद्‌गारों ने भारतीय युवकों में नवचेतना तथा राष्ट्रीय जागरण की संगीत-लहरी तरंगित कर दी। इसके साथ ही ब्रिटिश सरकार उनके प्रति सशंकित तथा क्रोधित हो गयी। उनके कार्यों को ब्रिटिश-विरोधी समझा गया। उन्हें 'गुप्तचर' तथा 'देशद्रोही' भी समझा गया।[2] परन्तु वह संघर्षों में जीवित रहीं, भारत के लिए जीती रहीं।

एक बार सन्देश के रूप में भगिनी निवेदिता से प्रश्न किया गया कि स्वामी रामकृष्ण परमहंस तथा स्वामी विवेकानन्द में क्या अन्तर है? उन्होंने सहज-सरल भाव से दिशासूचक उत्तर दिया—[3] "अतीत में पाँच हज़ार वर्षों में भारत ने जो कुछ

1. सिस्टर निवेदिता, 'हिस्ट्री ऑन नेशनल एजुकेशन इन इण्डिया' : *द कम्पलीट वर्क्स ऑफ़ सिस्टर निवेदिता*, भाग 4, पृ॰ 329-53
2. मार्गरेट मैकमिलन, *वीमेन ऑफ़ द राज* (न्यूयॉर्क, 1988), पृ॰ 15, 218-219; एसृ॰ सी॰ मित्तल, *इण्डिया डिस्टॉर्टेड : ए स्टडी ऑफ़ ब्रिटिश हिस्टोरियंस ऑन इण्डिया*, भाग 3 (नयी दिल्ली, 1998), पृ॰ 373
3. डॉ॰ विजय अग्रवाल, 'नैतिक उत्थान की विरासत', *दैनिक जागरण*, 12 जनवरी, 2013

सोचा, चिन्तन किया, उसी के प्रतीक हैं श्रीरामकृष्ण; और आगामी डेढ़ हज़ार वर्षों में भारत जो कुछ सोचेगा, चिन्तन करेगा, उसके अग्रिम प्रतिनिधि हैं स्वामी विवेकानन्द।"

## अन्तिम यात्रा

भगिनी निवेदिता भारत में आते ही श्वेतवस्त्रधारी संन्यासिनी बन गई थीं। वह पहली पाश्चात्य महिला थीं जिन्होंने भारतीय मोनेस्टिक ऑर्डर अपनाया।[1] इस महान् विदुषी ने 14 वर्षों तक अपनी कर्मभूमि भारत तथा भारतीयों की सेवा में अपना जीवन लगाया। स्वामी विवेकानन्द के देहावसान के पश्चात् निवेदिता पर मानसिक आघात होते रहे थे। उनकी सहेली श्रीमती सारा बुल का भी देहान्त हो गया था। 25 जुलाई, 1911 को स्वामी विवेकानन्द की माँ भुवनेश्वरी देवी की भी मृत्यु हो गई थी। अब भगिनी निवेदिता का स्वास्थ्य बिगड़ गया था। श्री जगदीश चन्द्र बसु के परिवार के साथ स्वास्थ्य-लाभ हेतु वह दार्जिलिंग गई थीं। 07 अक्टूबर, 1911 को उन्होंने अपनी अन्तिम इच्छा व्यक्त की जिसमें उन्होंने अपनी सभी वस्तुएँ तथा लिखित सामग्री बेलूर मठ के अधिकारियों को दे दी थी। उनका उपयोग कन्या-पाठशाला के लिए, देश की स्त्रियों को राष्ट्रीय शिक्षा प्रदान करने हेतु करने को कहा।

दिनांक 13 अक्टूबर, 1911, शुक्रवार को दार्जिलिंग (बंगाल) के 'रॉय विला' नामक भवन में निवेदिता ने अपना शरीर पूरा किया। संयोग से देहावसान से कुछ समय पूर्व बेलूर मठ से एक टोकरा फल आए थे। निवेदिता को लगा मानो उन्हें अपने गुरु स्वामी विवेकानन्द-श्री रामकृष्ण परमहंस का प्रसाद मिल गया। उन्होंने जगदीश चन्द्र बसु को कुछ समय पहले कहा था,[2]

> "मेरा समय समाप्त हो रहा है। मेरे दिवंगत हो जाने पर मेरा दाह-संस्कार ऐसे पर्वतीय स्थल पर किया जाए जहाँ से पवन देवता के प्रवाह में बहकर मेरी भस्म का कण-कण चारों ओर बिखरकर अपने देश की माटी में सदा-सर्वदा के लिए मिल जाए, जिससे मैं जगज्जननी भारत की गोदी में पहुँचकर बैठी रहूँ।"

1. रोमां रोलां, *द लाइफ ऑफ़ स्वामी विवेकानन्द एण्ड द युनिवर्सल गॉस्पल*, पृ 17
2. मृदुला सिन्हा, 'भगिनी निवेदिता : भारत माँ की दत्तक पुत्री', *पाञ्चजन्य*, फरवरी, 2013, पृ 73



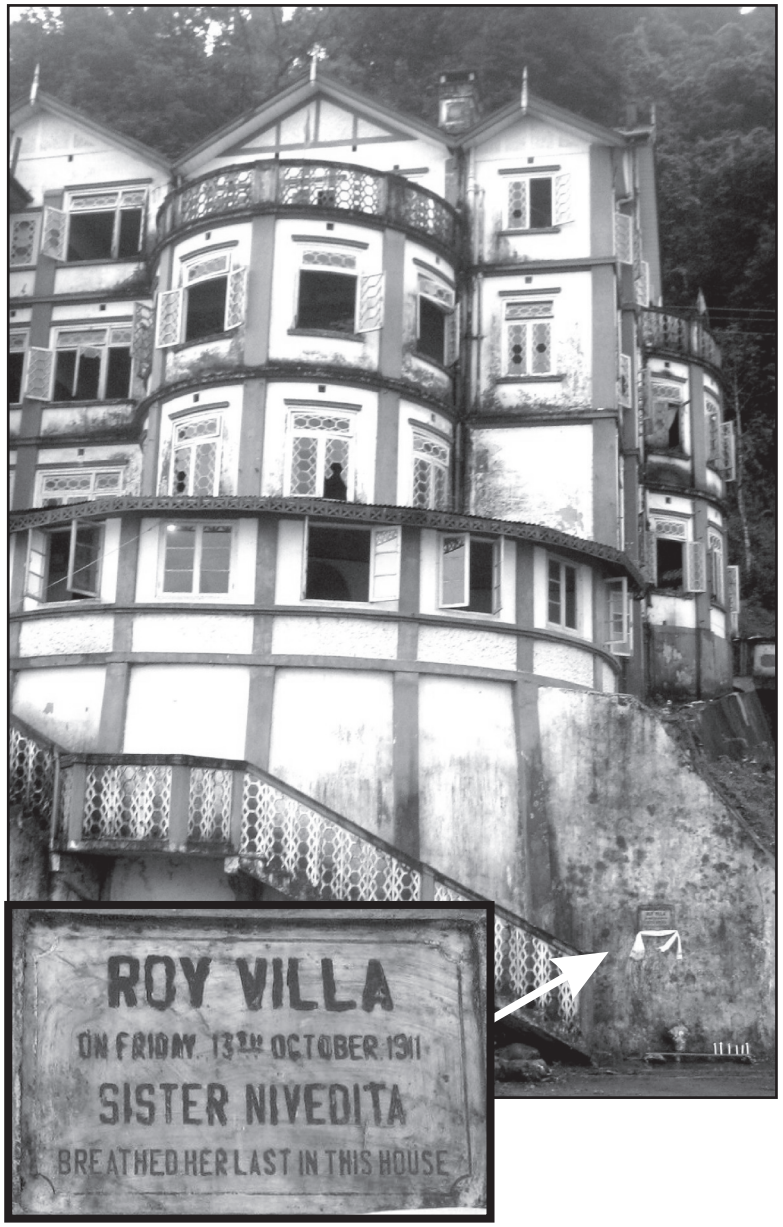


**दार्जिलिंग का 'रॉय विला' भवन, जहाँ भगिनी निवेदिता ने अन्तिम साँस ली (इनसेट में) निवेदिता की स्मृति में भवन में लगा सिलापट्ट**

भगिनी निवेदिता के अन्तिम शब्द थे, "मेरे जीवन की यह भटकती हुई नाव अब डूबना चाहती है, लेकिन मुझे उज्ज्वल भविष्य की किरणें दिखाई दे रही हैं।" भगिनी निवेदिता की स्मृति में श्री जगदीश चन्द्र बसु ने अपनी विख्यात अनुसन्धानशाला 'बसु विज्ञान मन्दिर' की स्थापना की। वहाँ उन्होंने हाथ में मशाल लिए एक महिला की प्रतिमा स्थापित की जो ज्योतिर्मय निवेदिता की प्रतिमूर्ति थी। बसु ने 'बसु विज्ञान मन्दिर' के प्रतीक-चिह्न के लिए निवेदिता द्वारा निर्मित 'वज्र' के चित्र को ग्रहण किया। निःसंदेह भारतीय संस्कृति की अनुयायी पाश्चात्य महिलाओं में निवेदिता का शीर्ष स्थान है।[1]

दार्जिलिंग नगर से एक हज़ार फीट नीचे निवेदिता की टूटी-फूटी समाधि पर लिखा हुआ देखा जा सकता है– 'Here repose the ashes of Sister Nivedita, who gave her all to India' (यहाँ भगिनी निवेदिता चिर निद्रा में सो रही हैं, जिन्होंने भारत के लिए अपना सर्वस्व निछावर कर दिया)। शीघ्र ही यह समाधि-स्थल राष्ट्रभक्तों के लिए तीर्थस्थल बन गया। आवश्यकता है उस पवित्र समाधि के जीर्णोद्धार तथा आसपास के क्षेत्र को अति सुन्दर बनाने की।

1. डॉ॰ एस॰ एस॰ नागौरी, पूर्वोद्धृत, पृ॰ 252

**डॉ० एनी बेसेन्ट**

(01 अक्टूबर, 1847–20 सितम्बर, 1933)

## अध्याय : दो

# डॉ० एनी बेसेन्ट

डॉ० एनी वुड बेसेन्ट (Annie Wood Besant) रानी विक्टोरिया-युग की एक द्रोही तथा लड़ाकू सन्तान थीं।[1] वह एक विख्यात थियोसोफिकल नेता, महिलाओं के अधिकारों के लिए संघर्षकर्त्री, लेखिका, वक्ता तथा आयरलैण्ड तथा भारत की स्वतन्त्रता के लिए आन्दोलनकर्त्री थीं। वस्तुतः श्रीमती बेसेन्ट का व्यक्तित्व बहुआयामी था। इसके लिए उनको 'भारत की आत्मा' तथा 'सर्वशुक्ला सरस्वती'[2] की उपाधियों से विभूषित किया गया। भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस की वह पहली महिला अध्यक्ष थीं।

दिनांक 01 अक्टूबर, 1847 को लन्दन में जन्मीं एनी, डॉ॰ विलियम पेज वुड (William Burton Persse Wood : 1782-1852) की पुत्री थी। विरासत में मिली थी पिता से सतत अध्ययन तथा ज्ञान की आकांक्षा तथा माता एमली मॉरिस (Emily Roche Morris Wood : d. 1874) से धार्मिक प्रवृत्ति तथा ईश्वरभक्ति। स्वयं एनी ने लिखा, 'बचपन से ही मैं रहस्यवादी तथा कल्पनावादी थी। धार्मिक

1. जयप्रकाश मिश्रा (सं॰) *रिसर्चेज इन सोशल साइंसेज़* (आगरा, 1993), देखें लेख राजकुमार, 'एनी बेसेन्ट्स पॉलिटिक्स इन इण्डिया ड्यूरिंग द फर्स्ट वर्ल्ड वॉर : ए स्टडी ऑफ़ हर पॉलिटिकल आइडियोलॉज़ी', पृ॰ 273
2. तत्कालीन काशी के संस्कृत के महान् विद्वान महोपाध्याय पं॰ गंगाधर शास्त्री द्वारा दिया गया सम्मान, देखें, रामधारी सिंह 'दिनकर', *संस्कृति के चार अध्याय* (पटना, 1970), पृ॰ 570



विचारों की थी तथा स्वप्न देखा करती थी। बचपन में ही मुझे खिलौने से खेलना जीवित वस्तुओं के समान प्रतीत होता था।[1] एनी के दो भाई थे। बड़े का नाम हेनरी तथा छोटे का एल्फ्रेड था। एनी जब पाँच वर्ष की थीं, तभी इनके पिता का देहान्त हो गया था। कुछ काल बाद इनके छोटे भाई का भी देहान्त हो गया। अतः प्रारम्भ से ही संघर्ष तथा कठिनाई का जीवन था। पिता विधवा पत्नी तथा बच्चों के लिए कुछ नहीं छोड़ गए थे।[2] पिता अंग्रेज़ थे तथा माता आयरिश। माता एक निःस्वार्थ तथा समर्पित थीं[3] परन्तु न वह स्वयं पढ़ी-लिखी थीं और न ही एनी को शिक्षा देने में कोई रुचि रखती थीं। परन्तु वह हेनरी को शिक्षा देने के लिए बहुत उत्सुक थीं। अतः कुछ काल बाद इनकी माता परिवार छोड़ हैरो (Harrow, London) चली गई थीं, जहाँ उनका लड़का ऊच्च शिक्षा प्राप्त कर सके। वस्तुतः 19वीं शताब्दी के रोमन कैथोलिक जगत् में लड़कियों को शिक्षा देना महत्त्वपूर्ण नहीं माना जाता था।

एनी सन् 1855 में एक धनी अविवाहित महिला एलेन मैरेट (Ellen Marryat) से शिक्षा लेने लगीं। मैरेट स्वयं लंगड़ी थी, परन्तु शिक्षा के द्वारा ग़रीब बच्चों की सेवा करना चाहती थी। वह प्रसिद्ध ब्रिटिश उपन्यासकार कैप्टन फ्रेडरिक मैरेट (Captain Frederick Marryat : 1792-1848) की बहिन थी। एनी बेसेन्ट सात वर्ष तक एलेन के साथ रहीं। एनी, एलेन मैरिट की शिक्षा-पद्धति से अत्यधिक प्रभावित थीं, जो रटने की बजाय क्रियात्मक तरीके से शिक्षा देती थी। एनी से संगीत को छोड़कर अनेक विषयों— साहित्य, कला, अंग्रेज़ी, फ्रेंच तथा जर्मन भाषा सीखी। उन्होंने भजन तथा बाइबल का अच्छा ज्ञान प्राप्त किया। 16 वर्ष की आयु में एनी अपनी माता के पास हैरो लौट आई थीं।

सन् 1867 में बीस वर्ष की आयु में एनी का विवाह एक जर्मन-पादरी फ्रैंक बेसेन्ट (Rev. Frank Besant : 1841-1917) से हुआ। इसी कारण वह 'एनी बेसेन्ट' कहलायीं। दोनों से एक पुत्र आर्थर डिग्वी (Arthur Digby Besant) तथा एक पुत्री मेवल (Mabel Emily Besant-Scott : 1870-1952) का भी जन्म हुआ। परन्तु उनका दाम्पत्य जीवन सुखी न रहा। विक्टोरियन युग के प्रख्यात पत्रकार विलियम थॉमस स्टीड (William Thomas Stead : 1849-1912) ने

1. एनी बेसेन्ट, *एन ऑटोबायोग्राफ़ी* (अड्यार, 1932), पृ॰ 122
2. *वही*, पृ॰ 127
3. *वही*, पृ॰ 9

लिखा है, 'एनी की माँ ने एनी को स्त्री और आदमी के स्वभाव के बारे में कभी नहीं बताया था और एनी के लिए यह बहुत ही दुर्भाग्यशाली सिद्ध हुआ'।[1]

इस सन्दर्भ में स्वयं एनी ने लिखा है, 'हम दोनों ही प्रतिकूल स्वभाव के हैं। फ्रैंक बेसेन्ट पति होने के नाते पत्नी की अधीनता चाहता था। लेकिन मैं स्वतन्त्र विचारों की थी। मैं घर के कामों के बारे में नासमझ थी तथा गर्म स्वभाव की थी। मैंने कभी किसी की अधीनता स्वीकार नहीं की थी। इस प्रकार एक हँसमुख लड़की शीघ्र ही गम्भीर हो गई तथा उसकी अपनी सारी आकांक्षाएँ समाप्त हो गयीं।' स्वतन्त्र प्रवृत्ति होने के कारण अपने पति से वैचारिक मतभेद इतने हो गए कि वह ईसाई-धर्म को ही तर्क की कसौटी पर कसने लगी। उसका परमात्मा पर विश्वास उठने लगा। लेकिन फ्रैंक बेसेन्ट उसे धार्मिक सत्संग में जाने का आग्रह करते, पर एनी इनकार कर देतीं। अतः अगस्त, 1873 में दोनों में संबंध-विच्छेद हो गया।

संबंध-विच्छेद से पूर्व एनी ने कुछ छोटी कहानियाँ भी लिखीं। सन् 1868 में उसकी पहली कहानी 'सनसाइन एण्ड शेड' ('Sunshine and Shade') तत्कालीन *'फैमिली हेराल्ड'* (*Family Herald*) नामक पत्रिका में प्रकाशित हुई थी। कहानी के नीचे 'एनी वुड' लिखा था।[2] परन्तु संबंध-विच्छेद के पश्चात् दोनों बच्चों के पालन-पोषण के लिए उन्होंने कढ़ाई का काम भी किया तथा एक घर में अध्यापिका का कार्य भी किया। 1874 में माता की मृत्यु के पश्चात् एनी का जीवन कष्टमय हो गया था। मानसिक तनाव दूर करने के लिए उन्होंने लन्दन विश्वविद्यालय में दसवीं की पढ़ाई शुरू की। उन्होंने बीजगणित, ज्यामिति तथा भौतिकविज्ञान का अध्ययन किया। 1879 में दसवीं पास कर टीचर्स ट्रेनिंग की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। उन्हें 1880 में एलीमेंट्री एनिमल फिज़ियोलॉज़ी पढ़ाने का अवसर भी दिया गया। उन्हें वनस्पतिविज्ञान के विषय में सम्मानित भी किया गया।

यहाँ पर उल्लेखनीय है कि बचपन से ही एनी को पढ़ने का बड़ा शौक था। वह पुस्तकों में इतना मग्न हो जातीं कि उसे 'आवाज़ें देकर बुलाया जाता परन्तु उसे कुछ पता ही नहीं चलता।'

उन्होंने प्रसिद्ध अंग्रेज़ कवि जॉन मिल्टन (John Milton : 1608-1674)

1. विलियम टी॰ स्टीड, *एनी बेसेन्ट : ए कैरेक्टर स्केच* (अड्यार, 1948), पृ॰ 25
2. एनी बेसेन्ट, *एन ऑटोबायोग्राफी*, पृ॰ 177-78

**एनी बेसेन्ट, 1885 ई०**

**मैडम हेलेना पेट्रोवना ब्लावत्सकी ( 1831-1891 )**

के महाकाव्य *पैराडाइज़ लॉस्ट* (*Paradise Lost*, 1667) को बड़े चाव से पढ़ा था। विख्यात स्कॉटिश उपन्यासकार सर वाल्टर स्कॉट (Sir Walter Scott, 1771-1832) की कुछ कहानियाँ पढ़ीं। कुछ बाद काल बाद विज्ञान-संबंधी पुस्तकों में रुचि बढ़ी। उन्होंने यूनानी-दार्शनिक प्लेटो (Plato : 427-342 BCE) तथा डर्बी (Joseph Wright of Derby : 1737-1797) के ग्रन्थों के अनुवाद तथा इटालियन कवि दाँते (Durante degli Alighieri : 1265–1321) का अध्ययन



किया। कवियों में उपर्युक्त के अलावा अंग्रेज़-कवि विलियम वर्ड्स्वर्थ (William Wordsworth : 1770-1850) तथा अंग्रेज़-दार्शनिक हर्बर्ट स्पेन्सर (Herbert Spencer : 1820-1903) का अध्ययन किया।

एनी ने धार्मिक पुस्तकों के अध्ययन में बहुत रुचि ली। इनके अध्ययन से उनको बाइबल के प्रति सन्देह होने लगा। परन्तु थियोसोफ़िकल सोसायटी (Theosophical Society, 1875) की संस्थापिका हेलेना पेट्रोवना ब्लावत्सकी (Helena Petrovna Blavatsky : 1831-1891) की विश्वप्रसिद्ध पुस्तक *'द सीक्रेट डॉक्ट्रिन'* (*'The Secret Doctrine'*, 1888) पढ़ने से उन्हें मानसिक शान्ति मिली तथा सन्देह दूर हो गये। एनी ने *क़ुरआन, भगवद्गीता,* उपनिषद्, *रामायण* तथा *महाभारत* का भी अध्ययन किया।

एनी बेसेण्ट का भारत आने से पूर्व इंग्लैण्ड के अनेक प्रसिद्ध व्यक्तियों से संबंध आया तथा वह वहाँ की अनेक संस्थाओं से जुड़ी रहीं। इनमें से कुछ व्यक्तियों का वर्णन करना आवश्यक होगा जिन्होंने उनके आगामी जीवन को प्रभावित किया। एनी अपने जीवन के प्रारम्भिक काल में मि॰ रॉबर्ट से प्रभावित थी जो ग़रीबों के मुक़दमे बिना कोई फ़ीस लिए लड़ते थे। वह खानों में काम करनेवाली ग़रीब महिलाओं तथा कारख़ानों में काम करनेवाले बच्चों के प्रति बड़े संवेदनशील तथा उनकी मदद करते थे। उनको 'ग़रीबों का वक़ील' कहा जाता था।[1]

सन् 1872 में एनी की भेंट थॉमस स्कॉट (Thomas Scott) नामक एक धनाढ्य व्यक्ति से हुई और वह उससे प्रभावित हुई। यह वह समय था जब एनी की ईसाइयत के प्रति आस्था कम हो रही थी। स्कॉट ने एनी के स्वतन्त्र विचारों की सराहना की थी। अपने पति से संबंध-विच्छेद तथा 1874 में अपनी माता की मृत्यु के पश्चात् उसने एनी के परिवार की सहायता की थी।

एनी के जीवन में चार्ल्स वाट्स (Charles Watts) से भेंट महत्त्वपूर्ण थी। यह भेंट पहली बार 02 अगस्त, 1874 को हुई थी, जब फ्री थॉट हॉल में एनी ने महान् अंग्रेज़ राजनीतिक कार्यकर्ता चार्ल्स ब्रेडलॉफ (Charles Bradlaugh : 1833-1891) का 'ईसामसीह तथा श्रीकृष्ण में एकरूपता' पर भाषण सुना था। ब्रेडलॉफ भी एनी की प्रतिभा से प्रभावित हुए तथा अपने पत्र *'नेशनल रिफॉर्मर'* (*'National Reformer'*, 1860) के स्टाफ में एनी को स्थान दिया था। ब्रेडलॉफ के सहयोग से

1. एनी बेसेन्ट, *एन ऑटोबायोग्राफ़ी,* पृ॰ 37

एनी ने एक पुस्तक *'द लॉ ऑफ़ पॉपुल्येशन'* (*'The law of population : its consequences and its bearing upon human conduct and morals'*, 1877) लिखी जिसकी समूचे इंग्लैण्ड में कड़ी चर्चा हुई। पुस्तक का मुद्दा परिवार-नियोजन का समर्थन था। इस पुस्तक के कारण जहाँ एक ओर उन्हें बदनाम करने का प्रयत्न किया गया, वहाँ 1878 में उन्हें उनकी पुत्री मेबेल से क़ानूनी रूप से अलग कर दिया गया। एनी अपने विचारों को बिना किसी भय से रखती थीं। मेबेल से उन्हें इसलिए अलग कर दिया कि उस पर एनी का 'ग़लत' प्रभाव पड़ सकता था। वस्तुतः एनी के खिलाफ़ योजनापूर्वक षड्यन्त्र किया गया था। इन्हीं दिनों डॉ॰ चार्ल्स नॉल्टन (Charles Knowlton : 1800-1850) नामक एक अमेरिकी लेखक ने *'फ्रूट्स ऑफ़ फिलॉसफ़ी'* (*'Fruits of Philosophy'*, 1891) नामक पुस्तक लिखी जिसमें परिवार-नियोजन का सर्मथन किया था। इस पुस्तक को 'अश्लील' घोषित किया गया। एनी तथा ब्रेडलॉफ ने इसे प्रकाशित किया था। इस पर दोनों को अश्लील साहित्य प्रकाशित करने के अपराध में गिरफ़्तार कर लिया गया। पुस्तक के सन्दर्भ में मुक़दमे के दौरान एनी ने कई लेख लिखे। उन्होंने *'इज द बाइबल इंडिक्टेबल?'* (*'Is The Bible Indictable ?'*) शीर्षक एक पुस्तिका लिखी, साथ ही *'लॉ ऑफ पॉपुल्येशन'* की रचना की। यह पुस्तक और डॉ॰ चार्ल्स नॉल्टन की पुस्तक भी नियोजित परिवार के समर्थन में थी। इसे भी अश्लील-साहित्य बताया गया; परन्तु इसी बीच 12 फरवरी, 1878 को न्यायालय का फ़ैसला एनी और ब्रेडलॉफ के पक्ष में आया। ब्रेडलॉफ प्रकाशक और ब्रिटिश संसद् के सदस्य भी थे। उन्होंने एनी द्वारा काम करनेवाली ग़रीब लड़कियों की आर्थिक दशा पर उठाए गए प्रश्न संसद् में भी पूछे थे। बाद में 1889 में ब्रेडलॉफ भारत भी आए थे तथा भारतीय राष्ट्रीय कॉंग्रेस के विशेष सत्र की अध्यक्षता भी की थी। उस वर्ष अधिवेशन के पण्डाल का नाम भी 'ब्रेडलॉफ हॉल' (Bradlaugh hall) रखा गया था।

इसी भाँति 1880 में एनी की भेंट विलियम थॉमस स्टीड से हुई थी। वह एक पत्रिका *'पाल माल गज़ट'* (*'Pall Mall Gazette'*, 1865) के संपादक थे। इन दिनों ट्राफलगर (Trafalgar Square, London) के लोगों की आर्थिक दशा अत्यन्त चिन्ताजनक थी। उसके समर्थन में जलसे-जुलूस निकलते रहते थे। ऐसी परिस्थिति में 18 नवम्बर, 1887 को एनी बेसेन्ट ने स्टीड के सहयोग से 'लॉ एण्ड लिबर्टी लीग' (Law and Liberty League) की स्थापना की। 1889 में स्टीड ने एनी बेसेन्ट को ब्लावत्सकी की पुस्तक *'सीक्रेट डॉक्ट्रिन'* पढ़ने को दी थी।



एनी बेसेन्ट पर सर्वाधिक प्रभाव मैडम हेलेना पेट्रोवना ब्लावत्सकी का पड़ा, जो जर्मन तथा रूसी रक्त की महिला थीं।[1] एनी बेसेन्ट ने तत्कालीन नेताओं से सम्पर्क ही स्थापित न किया बल्कि इंग्लैण्ड के सामाजिक तथा शैक्षणिक जीवन में भी रुचि ली। वस्तुतः सभी जगह उनकी दृष्टि ग़रीबों के प्रति आत्मीयता तथा सहानुभूति की थी। उन्होंने स्वयं अनेक कारख़ानों का दौरा किया तथा वहाँ पर कार्य करनेवाली महिलाओं की दशा का अपने लेखों में चित्रणकर समाज में जागृति लायी। उदाहरण के सन् 1888 में वह वहाँ के एक माचिस के कारखाने में गयीं। आख़िर में कारख़ाना-अधिकारियों को झुकना पड़ा तथा व्यवस्था के लिए उन्होंने लन्दन ट्रेड काउंसिल का गठन किया तथा दोनों में समझौता हो गया।[2] इंग्लैण्ड में एक वीमेन्स ट्रेड यूनियन भी बनाई गई जिसकी वह मन्त्री रहीं।

इंग्लैण्ड में रहते हुए एनी बेसेन्ट ने शिक्षा के क्षेत्र में बहुत रुचि ली। 1885 में इसके लिए दौरा भी किया। एनी को एक स्कूल के प्रबन्धन का कार्य भी दिया गया। उन्होंने वहाँ पढ़नेवाले छात्र-छात्राओं की अनुपस्थिति पर ध्यान दिया तथा इसके कारण जानने का प्रयत्न किया। अनेक बच्चे मज़दूरी के लिए जाते थे। इस सन्दर्भ में एनी की एक बड़ी देन स्कूलों में बच्चों के इलाज़ के लिए चिकित्सा-प्रणाली का प्रारम्भ करना था।[3] एनी ने लन्दन स्कूल बोर्ड (London School Board) में भी काम किया।

एनी बेसेन्ट 1893 में भारत आने से पूर्व लगभग 13-14 वर्षों से भारत के बारे में सजग थीं। विशेषकर इंग्लैण्ड के प्रधानमंत्री अनुदार दल के लॉर्ड डिजरैली (Benjamin Disraeli : 1874-1880) के भारत के प्रति दृष्टिकोण तथा भारत से तत्कालीन वायसराय लॉर्ड लिटन (Edward Robert Lytton : 1876-1880) की दमनकारी नीतियों से वह क्षुब्ध तथा चिन्तित थीं। इसी को उन्होंने एक पुस्तक के माध्यम से व्यक्त करते हुए लिखा—

'किसी भी देश को दोष देना स्वदेश-भक्ति नहीं कहा जा सकता। इंग्लैण्ड

1. बी॰ एल॰ ग्रोवर व यशपाल, *आधुनिक भारत का इतिहास* (16वाँ संस्करण, दिल्ली, 2001), पृ॰ 277
2. लन्दन के 'फेयरफील्ड मैचवर्क्स', बॉ (पहले 'ब्रायंट एण्ड मे फैक्ट्री', फेयरफील्ड रोड), जहाँ सन् 1888 में एनी बेसेन्ट ने हड़ताल की थी, के प्रवेश-द्वार पर एनी बेसेन्ट की स्मृति में एक नीला शिलापट्ट (Commemorative plaque for Annie Besant) लगाया गया है।
3. जॉर्ज सैलबरी, *डॉ॰ एनी बेसेन्ट : फिफ्टी ईयर्स इन पब्लिक वर्क* (1924), पृ॰ 10-11

के प्रति प्रेम का अर्थ यह नहीं है कि कुछ पूर्वीय साहसी लोगों की नीतियों का अनुमोदन करे अपितु इंग्लैण्ड से प्रेम का मतलब है उसके भूतकाल को सम्मान देना और इससे भी अधिक महानता का कार्य है कि अत्याचार के विरुद्ध विजय प्राप्त करना तथा उन देशों को उत्साहित करना जो अपनी स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष कर रहे हैं। इसलिए मज़बूत तथा शक्तिशाली के विरुद्ध दुर्बल के समर्थन में मेरे इस तर्क को स्वदेश यात्री के प्रति धोखा नहीं है, अपितु ये तो एक बालक का उस माँ को बचाने का प्रयत्न है जिसका सम्मान और जीवन को आडम्बरपूर्ण विश्वासघात से ख़तरा है।[11]

एनी बेसेन्ट का भारत आने का आकर्षण और भी बढ़ गया था जब चार्ल्स ब्रेडलॉफ भारत आये। भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस द्वारा उनका भव्य स्वागत हुआ। साथ ही भारत के सन्दर्भ में उनका चार्ल्स ब्रेडलॅफ से वार्तालाप हुआ।

इसी बीच 1890 में ब्लावत्सकी ने उन्हें भारत जाने को प्रेरित किया था।

## थियोसोफिकल सोसायटी तथा एनी बेसेन्ट

'थियोसोफी' (Theosophy) शब्द यूनानी भाषा के दो शब्द– थियोस + सोफिया (थियोसोफिया) से मिलकर बना है जिसका अर्थ है 'ब्रह्मविद्या'। इस संस्था की स्थापना संयुक्त राज्य अमेरिका के प्रसिद्ध नगर न्यूयॉर्क में दिनांक 08 सितम्बर, 1875 को हेलेना पेट्रोवना ब्लावत्सकी तथा कोलोनल हेनरी स्टील ऑल्कॉट (Colonel Henry Steel Olcott : 1832-1907) द्वारा हुई थी। इसकी स्थापना का मुख्य उद्देश्य प्रकृति के नियमों की खोज करना तथा सामान्य जनता के प्रति आस्था बनाए रखना था। इसके अनुयायी ईश्वरीय ज्ञान, आत्मिक हर्षोन्माद (Spiritual Ecstacy) तथा अंतर्ज्ञान (intuition) द्वारा ज्ञान प्राप्त करने के इच्छुक थे।[12] ब्लावत्सकी प्रेतविद्या की जानकार मानी जाती थीं।[13] उनका मत था कि धर्म की भिन्नता के कारण मनुष्य एक-दूसरे से भिन्न नहीं होता।[14] वह हिंदू-धर्म की भाँति पुनर्जन्म में विश्वास रखती थीं तथा उनका विश्वास था कि देवात्माएँ तिब्बत में निवास करती हैं। साथ ही उनका भाव तथा व्यवहार सभी धर्मों के प्रति उदारता तथा

11. एनी बेसेन्ट, इंग्लैण्ड, *इण्डिया एण्ड अफ़गानिस्तान* (अड्यार, 1931), पृ 102-03
12. बी॰ एल॰ ग्रोवर व यशपाल, पूर्वोद्धृत, पृ 277
13. रामधारी सिंह 'दिनकर', पूर्वोद्धृत, पृ 568
14. *वही*, पृ 569

हेलेना पेट्रोवना ब्लावत्सकी एवं कोलोनल ऑल्कॉट, 1888 ई०

**थियोसोफिकल सोसायटी के मुख्यालय (अड्यार, चेन्नई) में ब्लावत्सकी एवं हेनरी ऑल्कॉट की प्रतिमा; प्रतिमा के शीर्ष पर 'सत्यमास्ति परोधर्मः' और नीचे 'ओं' व स्वस्तिक उत्कीर्ण है**

सहिष्णुता का था। वह भारतीय सम्प्रदायों, प्राचीन दर्शन तथा परम्पराओं के प्रति आस्था रखती थीं। वह हिंदू-धर्म के विश्व-बन्धुत्व चिन्तन पर बल देती थीं। शीघ्र ही इस सोसायटी ने आन्दोलन का स्वरूप धारण किया तथा भारत, विशेषकर दक्षिण



भारत में एक महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक आन्दोलन तथा पुनर्जागरण की भूमिका निभायी। यह आन्दोलन शीघ्र ही हिंदू-पुनर्जागरण का एक भाग बन गया।

स्वामी दयानन्द (1824-1883) के निमन्त्रण पर 16 फरवरी, 1879 को ब्लावत्सकी तथा ऑल्कॉट भारत आए थे। इन दोनों ने अनेक भाषणों में हिंदू-धर्म को विश्व के सभी धर्मों में श्रेष्ठ बतलाया। ऑलकॉट ने अपने भारत-आगमन तथा यहाँ सोसायटी की स्थापना का उद्देश्य भारत की प्राचीन संस्कृति तथा इसके गौरव तथा गरिमा तथा भारत में ईसाइयत की आँधी को रोकना बताया। 1882 में मद्रास के निकट अड्यार नामक स्थान पर इस सोसायटी का मुख्य केन्द्र स्थापित किया गया। उल्लेखनीय है कि इन्हीं दिनों ब्लावत्सकी की भेंट ए ओ ह्यूम (Allan Octavian Hume : 1829-1912) से शिमला में हुई। ह्यूम 1857 के महासमर का भगोड़ा था तथा बाद में इण्डियन नेशनल काँग्रेस का संस्थापक बना। उसे सरकारी पद से हटाया गया था तथा इस समय वह पूर्ण सेवामुक्त था। वह यद्यपि ईसाइयत में विश्वास रखता था, तथापि इसके संगठित चर्च को महत्त्व न देता था। वह 1879 में ब्लावत्सकी से इलाहाबाद में मिला था। कुछ समय के लिए वह ब्लावत्सकी का भी अनुयायी बन गया था। मैडम ब्लावत्सकी शिमला में ह्यूम के घर 'रौथनी केसल' (Rothney castle) में आती रहती थीं। ह्यूम ने सोसायटी की प्रमुख शोध-पत्रिका *'द थियोसोफिस्ट'* (*'The Theosophist'*, 1879) में 'एच एस ' के गुप्त नाम से तीन लेख 'फ्रेंगमेन्ट्स ऑफ़ ऑक्यूल्ट ट्रुथ' ('Fragments of Occult Truth') शीर्षक से दिए थे।[1] परन्तु ब्लावत्सकी की चमत्कारपूर्ण आस्थाओं से वह शीघ्र ही विचलित हो गया था तथा 1883 में उसकी थियोसोफिकल सोसायटी से विदाई हो गई थी।[2]

एनी बेसेन्ट का थियोसोफिकल सोसायटी से संबंध भारत आने से पूर्व ही हो गया था। एनी बेसेन्ट ने ब्लावत्सकी की पुस्तक *'सीक्रेट डॉक्ट्रिन'* को 1889 में पढ़ा था। तभी से वह ब्लावत्सकी से मिलने को उत्सुक थीं। एनी ने ब्लावत्सकी को

1. एडवर्ड जॉन बक, लेख 'शिमला : पास्ट एण्ड प्रेजेन्ट' (कोलकाता, पृ 111-125); बेवीर मार्क, थियोसोफिकल्स एण्ड द ओरीज़न ऑफ़ द इण्डियन नेशनल काँग्रेस, पृ 1-3, *इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ़ हिंदू स्टडीज़*, 2003, पृ 99-115
2. एडवर्ड मॉल्टन, 'ए ओ ह्यूम एण्ड इण्डियन नेशनल काँग्रेस : ए रिसेसमेन्ट', *जर्नल ऑफ़ साउथ एशियन स्टडीज़*, 8 (1), पृ 5-13; एस सी मित्तल, *राष्ट्रीय चेतना के प्रकाश में भारत का स्वाधीनता संघर्ष* (नयी दिल्ली 2012), पृ 248

कई पत्र भी लिखे थे। अतः उन्होंने भी एनी को निमन्त्रित किया। 10 मई, 1889 की अपनी पहली भेंट के बारे में एनी ने लिखा, 'एक ओर (ब्लावत्सकी) कुर्सी पर बैठी थीं तथा काँपनेवाली आवाज़ में बोलीं, "मेरी प्यारी बेसेन्ट ! काफ़ी समय से मैं तुमसे मिलना चाहती थी।" उन्होंने मेरा हाथ अपने हाथ में ले लिया। एनी ने मैडम के बारे में कुछ जानना चाहा। लेकिन उन्होंने कुछ नहीं बताया। इससे एनी कुछ निराश हुईं। लेकिन जैसी ही एनी वापिस जाने के लिए उठीं, एनी पुनः लिखती हैं, पर्दा हटा और चमकती आँखों में मुझे देखकर कहा, "ओह मेरी प्यारी बेसेन्ट, यदि केवल तुम हमारे बीच आ जाती।"[1] तभी 21 मई, 1889 को एनी बेसेन्ट थियोयोफिकल सोसायटी की सदस्या बन गईं और तभी से एनी को एक मिशन मिल गया। 1890 में ब्लावत्सकी ने उन्हें भारत जाने के लिए कहा। तभी से एनी बेसेन्ट को भारत जाने की लगन लग गयी। उन्होंने एक व्यक्ति से हिंदुस्तानी और संस्कृत सीखी। परन्तु वह अस्वस्थ हो गयीं। 1891 में ब्लावत्सकी की भी मृत्यु हो गयी।

आख़िर 16 नवम्बर, 1893 को वह प्रातः 10:24 पर भारत पहुँच गईं तथा जीवनपर्यंत (1933) यहीं रहीं। इस समय उनकी आयु 46 वर्ष की थी। एक विद्वान् के अनुसार, थियोसोफिकल सोसायटी ने ही एनी बेसेन्ट के जीवन पर सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्रभाव डाला। वास्तव में भारत इस सोसायटी का प्रधान कार्यालय था।[2]

थियोसोफिकल सोसायटी का यह आन्दोलन एक धर्मसुधार आन्दोलन था जो पाश्चात्य विद्वानों द्वारा भारतीय धर्म, संस्कृति, तथा यहाँ के विचारों से प्रभावित होकर किया गया था।[3] एनी ने भारत पहुँचते ही उसे अपना देश बतलाया। अपनी वेशभूषा तथा खानपान बदला। गाउन छोड़कर भारतीय साड़ी पहनीं। भारतीय तीर्थस्थानों की यात्रा की। अमरनाथ जी की पैदल यात्रा की। उनका उद्देश्य आध्यात्मिकता का प्रचार कर भारतीयों में भ्रातृत्व का भाव जगाना था। एनी बेसेन्ट ने इस धार्मिक पुनरुत्थान आन्दोलन को नवशक्ति दी।[4] वस्तुतः थियोसोफिकल कोई धर्म न था, बल्कि धर्म का आश्रम बताया गया। इसके लिए अपना धर्म छोड़ने की आवश्यकता नहीं है। इसके 3 उद्देश्यों— 1. विश्व-बंधुत्व, 2. तुलनात्मक धर्म और

1. आर्थर एच नीदरकोट, *फर्स्ट फाइव लाइक्स ऑफ़ एनी बेसेन्ट* (लन्दन, 1961), पृ 441-442
2. जियोफर वैस्ट, *द लाइफ ऑफ़ एनी बेसेन्ट* (लन्दन, 1929), पृ 203
3. एसृ सीृ मित्तल, *भारत का सामाजिक-आर्थिक इतिहास (1757-1947)*, पञ्चकुला, 2005, पृ 58
4. नेमई साधन बोस, पूर्वोद्धृत, पृ 27



3. परलोकविद्या का सन्धान पर बल दिया गया।[1] कुछ काल बाद यह चर्चा प्रचलित हो गई बेसेन्ट पूर्वजन्म में शुद्ध ब्राह्मणी थीं और इस कारण वह हिंदू-शास्त्रों की व्याख्या करने में सिद्धहस्त हैं।[2]

एनी बेसेन्ट ने हिंदू-समाज में भ्रातृत्व की भावना जाग्रत् की तथा जाति की जटिलता को कम करने का प्रयास किया। सामाजिक कुरीतियों का विरोध किया। बालविवाह, छुआछूत, कन्या-ब्रिकी का विरोध और विधवा-विवाह का समर्थन किया। बालविवाह के दुष्परिणामों से वह परिचित थीं, उनका मत था इससे लड़कियों का शरीर प्रायः दुर्बल हो जाता है और मानसिक शक्ति क्षीण हो जाती है। उन्होंने थियोसोफिकल सोसायटी के माध्यम से हिंदू-धर्मप्रचार तथा शिक्षा की उन्नति के लिए महत्त्वपूर्ण प्रयास किये।

दिनांक 17 फरवरी, 1907 को हेनरी ऑल्कॉट के देहावसान के पश्चात् एनी बेसेन्ट थियोसोफिकल सोसायटी की अध्यक्षा चुनी गयीं। डॉ॰ भगवानदास (1869-1958) के पुत्र श्रीप्रकाश (1890-1971), जो एनी बेसेन्ट के थियोसोफिकल तथा शिक्षा-संबंधी में सहयोगी तथा एनी के शिष्य भी थे, ने एनी के मृदु स्वभाव के बारे में लिखा, 'वह इतनी साहसी महिला थीं कि जब वह अपने सहयोगियों के साथ कार्य करती थीं तो इस बात की परवाह नहीं करती थीं कि संसार उनके बारे में क्या सोचेगा।'[3]

## हिंदू-धर्म की श्रे ता

एनी बेसेन्ट ने भारतीय ग्रन्थों का गम्भीर अध्ययन किया। उन्होंने *भगवद्गीता* का अनुवाद किया तथा वेदान्त में अपना विश्वास प्रकट किया। एनी बेसेन्ट का विश्वास था कि वह भारत में कई बार जन्म ले चुकी हैं तथा वर्तमान जन्म से पूर्व उनका नाम एनी वुड था।[4] उन्होंने अपने जीवन को पूर्णतः भारतीय ढंग से सुव्यवस्थित किया। वह हिंदू देवी-देवताओं, अवतारों तथा भारतीय प्राचीन ग्रन्थों में आस्था रखती थीं।

काशी रहकर एनी बेसेन्ट ने *रामायण* तथा *महाभारत* के संक्षिप्त अंग्रेज़ी अनुवाद किये। सन् 1905 में उन्होंने डॉ॰ भगवानदास के सहयोग से *भगवद्गीता*

1. बीृ एलृ ग्रोवर व यशपाल, पूर्वोद्धृत, पृ 277 फुटनोट
2. रामधारी सिंह 'दिनकर', पूर्वोद्धृत, पृ 573-74
3. श्रीप्रकाश, *एनी बेसेन्ट : एज वुमन एण्ड एज लीडर* (मुम्बई, 1962), पृ 37
4. डॉ॰ हरिश्चन्द्र शर्मा, *भारतीय इतिहास की आत्मा वेदान्त* (रोहतक, 2010), पृ 157

का अंग्रेज़ी में अनुवाद किया।[1] इनकी पुस्तक *'रिलिजीयस प्रॉब्लम्स इन इण्डिया'* (*'The Religious Problem in India'*, 1909) भारत की धार्मिक समस्या पर इनके चार व्याख्यानों का संग्रह है।

प्रो॰ हरिश्चन्द्र वर्मा ने उनके वेदांत-संबंधी ज्ञान के बारे में लिखा है,[2] 'श्रीमती एनी बेसेन्ट हिंदू-धर्म और वेदान्त के मूल सिद्धान्तों– निर्गुण ब्रह्म, सगुण ब्रह्म, बहुदेववाद, अवतारवाद, मूर्तिपूजा, कर्म-सिद्धान्त, पुनर्जन्म, योग और आध्यात्मिक उत्थान में गहन आस्था रखती थीं। वह उपनिषदों और गीता के ज्ञान से प्रेरित और प्रभावित थीं ही; रामायण, महाभारत और पुराणों में भी उनकी गहरी पैठ थी। हिंदू-धर्म की पूर्णता, महानता, व्यापकता आदि के विषय में उनका मत अभिनन्दनीय है।'

एनी बेसेन्ट के अनुसार भारत की सभी समस्याओं का निदान वेदान्त में सम्भव है।[3] उन्होंने अपने विभिन्न भाषणों तथा लेखों (पैम्फ्लेटों) द्वारा हिंदू-धर्म की महानता बतलायी। उदाहरणतः 1914 में उन्होंने मद्रास (चेन्नई) के प्रेसीडेंसी कॉलेज़ में छात्रों के समक्ष कहा,[4]

> "लगभग चालीस से भी अधिक वर्षों के अध्ययन के उपरान्त मैं इस निष्कर्ष पर पहुँची हूँ कि न कोई धर्म इतना परिपूर्ण है न कोई इतना वैज्ञानिक, न कोई दार्शनिक तथा न ही कोई इतना आध्यात्मिक है, जितना हिंदुत्व के नाम से ज्ञात महान् धर्म..... जितना अधिक आप इसका ज्ञान प्राप्त करेंगे, उतना ही अधिक इसके प्रति आपका अनुराग बढ़ता जायेगा;[5] जितना अधिक आप इसकी गहराई में उतरने का प्रयास करेंगे, उतना ही गहराई से आप इसका मूल्यांकन करेंगे।"

एनी बेसेन्ट ने समस्त भारतीयों का आह्वान करते हुए कहा,[6] "भूलो मत,

1. *The Bhagavad-Gita with Samskrit Text, free translation into English, a word-for-word translation, and an Introduction on Samskrit Grammar*, by Annie Besant and Bhavan Das, Published by Theosophical Publishing Society, London And Benares, 1905, 398 pages
2. डॉ॰ हरिश्चन्द्र शर्मा, पूर्वोद्धृत, पृ॰ 157-58
3. *वही*, पृ॰ 158
4. *वही*, पृ॰ 158
5. डी॰ एस॰ शर्मा, *हिंदुइज्म थ्रो द एजज़*, पृ॰ 117
6. डॉ॰ के॰ दामोदरन, *भारतीय चिन्तन परम्परा*, पृ॰ 392

**एनी बेसेन्ट, 1897 ई०**

हिंदू-धर्म के बिना भारत का कोई भविष्य नहीं है। हिंदू-धर्म ही वह मिट्टी है जिसमें (भारत की) जड़ें गहरी जमी हैं। इस मिट्टी से अलग कर देने पर, निश्चय ही वह (भारत) उसी तरह कुम्हला जाएगा जैसे कोई वृक्ष जमीन से उखाड़ लिए जाने पर

**इण्डियन स्काउट यूनिफॉर्म में डॉ० एनी बेसेन्ट ( 1931 ई० )**



कुम्हला जाता है।"

एनी बेसेन्ट विश्व में सभी धर्मों का एक ही उद्देश्य बताती हैं— स्वयं का अनुभव तथा भगवान् में विश्वास। धर्म का सार है एकता तथा एक परमात्मा पर विश्वास।[1] उन्होंने स्वयं हिंदू-धर्म पर दो पुस्तकों का संपादन किया जिसका उद्देश्य प्राथमिक कक्षा तथा महाविद्यालयीन छात्रों को हिंदू-धर्म का ज्ञान कराना था।

एनी बेसेन्ट ने थियोसोफिकल सोसायटी के अंतर्गत अपने भाषणों में हिंदू-धर्म, पारसी-धर्म, बौद्ध-धर्म तथा ईसाई-धर्म को विश्व का महान् धर्म बतलाया।[2] सर्वप्रथम उन्होंने हिंदू-धर्म को प्राचीनतम बतलाया। उन्होंने हिंदू-धर्म की विशिष्टताओं पर प्रकाश डालते हुए तीन बातों— 1. ब्रह्मज्ञान अथवा आध्यात्मिक सत्य, 2. प्रकृति से तारतम्य तथा 3. योगविज्ञान— पर बल दिया। साथ ही उन्होंने हिंदू-धर्म के कर्म-सिद्धान्त— 'सत् चित्त आनन्द' अर्थात् आत्मज्ञान आदि विषयों की विशद व्याख्या की।

हिंदू-धर्म के पश्चात् दूसरा ऐतिहासिक धर्म पारसी बतलाया। आर्यों की श्रेणी में वे दूसरे स्थान पर आते हैं।[3] एनी बेसेन्ट ने स्पष्ट किया कि प्राचीन ईरानवासी आर्य थे, सेमेटिक नहीं।[4] जोरोस्टर (Zoroaster) उनका प्रमुख था। वे अपने प्राचीन लेख ज़मीन के अन्दर, मन्दिरों, पुस्तकालयों तथा अन्य सुरक्षित स्थानों पर रखते थे ताकि शत्रुओं के हाथ में न पड़ें।[5] पारसी-धर्म का प्रमुख विचार जीवन के हर क्षेत्र में पूर्ण नैतिकता था।[6] वे सात्त्विकता को जीवन के प्रत्येक कार्य, प्रत्येक संबंधों में रखते थे।

वह तीसरा प्रमुख धर्म बौद्ध-धर्म बतलाती हैं। वह इसे हिंदू-धर्म की पुत्री[7] कहती हैं। उनके अनुसार बौद्ध-शास्त्रों में हिंदू-शास्त्रों की ही ध्वनि है।[8] वह 'त्रिपिटक' ग्रंथ की चर्चा करते हुए महात्मा बुद्ध का जन्म 623 ई॰ पू॰ मानती हैं तथा

1. एनी बेसेन्ट, *द फ्यूचर ऑफ़ इण्डिया*, पृ॰ 13
2. एनी बेसेन्ट, *फोर ग्रेट रिलीजन्स* (अड्यार, 1906), पृ॰ 12-13
3. *वही*, पृ॰ 58
4. *वही*, पृ॰ 61
5. *वही*, पृ॰ 62
6. *वही*, पृ॰ 63
7. *वही*, पृ॰ 99
8. *वही*, पृ॰ 99

उनके जीवन की चार घटनाओं का विस्तृत वर्णन करती हैं। बौद्ध-धर्म की शिक्षाओं पर प्रकाश डालते हुए वह इच्छा व्यक्त करती हैं कि कितना अच्छा हो यदि माता व पुत्री दोनों मिल जायें।[1]

अन्त में चौथे धर्म के रूप में वह ईसाइयत पर प्रकाश डालती हैं। इसमें उन्होंने ईसाई-ग्रन्थों– *'ओल्ड टेस्टामेंट'* (*'Old Testament'*), *'प्लाज्म'* (*'Psalms'*) तथा *'न्यू टेस्टामेंट'* (*'New Testament'*) की चर्चा की।[2] इसमें *न्यू टेस्टामेंट* का वर्णन करते हुए ईसामसीह के जीवन, प्रारम्भ में चर्च का वर्णन, कुछ लेखों की चर्चा तथा उसकी भविष्यवाणियों पर भी प्रकाश डाला। अन्त में उन्होंने धर्म का कार्य सभी में भाईचारे की भावना बताया है।[3] एनी बेसेन्ट ने विश्व में प्रचलित प्रमुख धर्मों का विवेचन ही नहीं किया, अपितु समकालीन भारत के कुछ प्रमुख धार्मिक सुधार-आन्दोलनों के बारे अपने विचार भी व्यक्त किये।

यद्यपि थियोसोफिकल सोसायटी के जन्मदाताद्वय का भारत में आगमन 16 जनवरी, 1879 का स्वामी दयानन्द के निमन्त्रण से हुआ था, जहाँ आर्य समाज ने उनका भव्य स्वागत किया था;[4] तथापि एनी बेसेन्ट आर्य समाज के विचारों से पूर्णतः सहमत न थीं। उन्होंने आर्य समाज द्वारा केवल वैदिक ग्रन्थों के ही महत्त्व को अस्वीकार करके स्मृति, पुराण, धर्मशास्त्र, रामायण, महाभारत को भी बड़ा महत्त्व दिया। वह 'आर्य' तथा 'हिंदू' को भिन्न नहीं मानती थीं। वह हिंदू-धर्म के पौराणिक स्वरूप को भी महत्त्व देती हैं। वह आर्य समाज के ध्वंसात्मक तथा खण्डन स्वर को नहीं मानती थीं। वह हिंदू-धर्म के विभिन्न स्वरूपों– पुनर्जन्म, अवतारवाद को स्वीकार करती हैं। वस्तुतः एनी बेसेन्ट ने हिंदू-धर्म की श्रेष्ठता को स्वीकार किया।

रामकृष्ण मिशन के लोग तथा स्वामी विवेकानन्द उनका बड़ा आदर करते थे। स्वामी विवेकानन्द का उनके बारे में कहना था कि वह श्रेष्ठतम सच्ची महिलाओं में से एक हैं।[5] एक दूसरे स्थान पर स्वामी विवेकानन्द ने एनी बेसेन्ट के बारे में कहा, 'वह हमारी मातृभूमि की सच्ची हितचिन्तक हैं और यथाशक्ति उसकी उन्नति की चेष्टा कर रही हैं। इसलिए वह प्रत्येक सच्ची भारत-सन्तान की विशेष कृतज्ञता की

1. एनी बेसेन्ट, *फोर ग्रेट रिलीजन्स* (अड्यार, 1906), पृ 148
2. *वही*, पृ 153-54
3. *वही*, पृ 200
4. रामधारी सिंह 'दिनकर', पूर्वोद्धृत, पृ 569
5. विवेकानन्द, *विवेकानन्द साहित्य*, भाग 4 (कोलकाता, 1989), पृ 262



अधिकारिणी हैं। प्रभु उन पर तथा उनसे संबंधित सब पर आशीर्वाद की वर्षा करें।'[1] परन्तु यह लिखना अनुचित न होगा कि स्वामी विवेकानन्द के अनुसार हमारे धर्म के बारे में उनका ज्ञान बहुत सीमित है।[2] तथा स्वामी विवेकानन्द को विश्व धर्म संसद् में थियोसोफिकल सोसायटी के सदस्यों का व्यवहार अत्यन्त असन्तोषजनक ही नहीं, बल्कि शत्रुतापूर्ण भी लगा।[3]

एनी बेसेन्ट ब्रह्मसमाजियों से पूर्णतः संतुष्ट न थीं। उन्हें लगता था कि ब्रह्मसमाज का संशोधित हिंदुत्व, ईसायत का भारतीय संस्करण हो गया है।[4] एनी बेसेन्ट ने भारत में हिंदुत्व की रक्षा करने को आवश्यक बतलाया। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा, "भारत और हिंदुत्व की रक्षा भारतवासी और हिंदू ही कर सकते हैं। हम बाहरी लोग आपकी जितनी चाहे प्रशंसा करें, किन्तु आपका उद्धार आपके ही हाथों में है। अतः किसी प्रकार के भ्रम में न रहें।"

उन्होंने अपने भावों को पुनः स्पष्ट करते हुए कहा, 'भारत में प्रश्रय पानेवाले अनेक धर्म हैं, अनेक जातियाँ हैं, किन्तु इनमें से किसी का भी सिरा भारत के अतीत तक नहीं पहुँचा है। इनमें से किसी में भी यह दम नही है कि भारत को वे राष्ट्र के रूप में जीवित रख सकें। इनमें से प्रत्येक भारत में विलीन हो गया तो क्या शेष रहेगा? तब शायद, इतना याद किया जाएगा कि भारत नाम का कभी कोई देश था। भारत के इतिहास को देखिये, उसके साहित्य, कला और स्मारकों को देखिये, सब पर हिंदुत्व स्पष्ट रूप से खुदा हुआ है।'

एनी बेसेन्ट के भारत के सन्दर्भ में 'धर्म', 'राष्ट्रीयता', हिंदुत्व– ये प्रायः पर्यायवाची शब्द थे। संक्षेप में वह तत्कालीन अनेक अंग्रेज़ इतिहासकारों तथा उनसे प्रभावित भारतीय नेताओं की भाँति भारतीय राष्ट्र के विदेशी भ्रम से ग्रस्त न थीं। वह सम्भवतः पहली ब्रिटिश महिला थीं जिन्होंने भारतीय राष्ट्र का स्वरूप भारत के प्राचीन धर्म तथा संस्कृति में देखा था।

इतना ही नहीं, उन्होंने भारतीयों द्वारा पश्चिम के अंधानुकरण का विरोध किया। उन्होंने अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे भारतीय युवकों को पुनः भारतीय संस्कृति, साहित्य

1. विवेकानन्द, *विवेकानन्द साहित्य*, भाग 5 (कोलकाता, 1989), पृ 103
2. *वही*, भाग 4, पृ 262
3. *वही*, भाग 4, पृ 262; वही भाग 5, पृ 104
4. रामधारी सिंह 'दिनकर', पूर्वोद्धृत, पृ 572

तथा धर्म की ओर ध्यान देने को कहा था। उन्होंने भारतीय युवकों की बढ़ती हुई भौतिकवादी प्रवृत्ति के बारे में कहा था। उन्होंने दुःखी शब्दों में भारत के युवकों का चित्र खींचते हुए कहा,

> "लोग आस्तिकता और नास्तिकता के बीच झटके खा रहे थे। आधिभौतिकता की बाढ़ के मारे राष्ट्र का जीवन विशृंखलित हो गया था। अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे लोग हक्सले मिल और स्पेंसर के अनुयायी हो रहे थे; किन्तु अपने-अपने साहित्य का उन्हें कोई ज्ञान नहीं था। वे अपने अतीत से घृणा करते थे। अतः भविष्य के विषय में उनका कोई विश्वास नहीं था। वे अंधे होकर अंग्रेज़ों के तौर-तरीकों की नकल कर रहे थे एवं अपनी कला-कौशल और शिल्प का विनाश करके अंग्रेज़ी सामान से अपना घर सजा रहे थे। राष्ट्रीय ज़ोश का उनमें लेश भी नहीं था। राष्ट्रीय जीवन की गति बतानेवाली कोई भी क्रिया कहीं दिखाई भी नहीं पड़ती थी।"

कुल मिलाकर भारत के धार्मिक क्षेत्र में एनी बेसेन्ट के योगदान को भुलाया नहीं जा सकता। उन्होंने अपने ग्रन्थों, भाषणों तथा अपने व्यवहार से विश्व में हिंदू-धर्म की वैज्ञानिकता, आध्यात्मिकता तथा श्रेष्ठता को सर्वोपरि बतलाया। उन्होंने हिंदुओं को अपने प्राचीन वैभव तथा गौरव की ओर आकर्षित किया तथा उनमें स्वाभिमान तथा आत्मगौरव की भावना का सञ्चार किया।

## एक महान् शिक्षाविद्

भगिनी निवेदिता की भाँति एनी बेसेन्ट भी भारत के पुनरुत्थान के लिए शिक्षा को अत्यधिक महत्त्व देती हैं। वह शिक्षा तथा सांस्कृतिक उन्नति को देश की स्वाधीनता के लिए प्रथम पग मानती हैं।

भारत आने से पूर्व से ही वह शिक्षा के क्षेत्र में बहुत रुचि लेती थीं। वह लन्दन के स्कूल बोर्ड से जुड़ी होने के कारण शिक्षा के प्रबन्ध, शिक्षार्थियों के मनोविज्ञान तथा शिक्षा-क्षेत्र की अनेक समस्याओं से परिचित थीं।

भारत आते ही उन्होंने शिक्षा के क्षेत्र में अनेक दोष पाये। वह प्रचलित पाश्चात्य शिक्षा-पद्धति से असंतुष्ट थीं। उन्हें भारत में शिक्षा अपने मूल स्वभाव से भटकी लगी। उन्हें लगा कि भारत की आधुनिक शिक्षा केवल मानसिक तथा भौतिक प्रशिक्षण तक ही सीमित है। इसमें आध्यात्मिक प्रकृति की अभिव्यक्ति, भावात्मक प्रकृति का विकास तथा प्रशिक्षण और कुछ समय पूर्व तक, भौतिक शरीर की उच्च



क्षमता के विकास और प्रशिक्षण की अवहेलना की है। एनी बेसेन्ट तत्कालीन भारतीय शिक्षा को असंतुलित, पूर्णतः किताबी, स्वदेश-संस्कृति की भावनारहित तथा अराष्ट्रीय मानती हैं। परन्तु साथ ही उनका अटूट विश्वास था कि वास्तव में शिक्षित लोगों की एक पीढ़ी भारत का नक्शा बदलेगी।[1]

एनी बेसेन्ट ने प्रारम्भ में भारत की प्राचीन वैदिक शिक्षा के उद्देश्यों, प्रशिक्षण-पद्धति तथा इसके पाठ्यक्रम का गम्भीर चिन्तन किया। उन्होंने प्राचीन काल की आश्रम में शिक्षा-व्यवस्था तथा गुरु-शिष्य परम्परा का गहराई से अध्ययन किया। इसके साथ ही उनकी विशेष रुचि प्राचीन काल में स्त्री-शिक्षा के स्वरूप को भी जानने की रही। उन्होंने महिलाओं की प्राचीन शिक्षा के बारे में लिखा, 'स्त्रियों को धार्मिक शिक्षा में प्रशिक्षित किया जाता था। उन्हें बहुत से मंत्र कण्ठस्थ होते थे, अपने घर के कार्य में वे पूरी तरह प्रशिक्षित थीं।'[2] वह महिलाओं की शिक्षा में परिवार की विशिष्ट भूमिका मानती हैं। वह महिलाओं की शिक्षा के लिए वैदिक शिक्षा-प्रणाली को बड़ा महत्त्व देती हैं।

एनी बेसेन्ट ने आध्यात्मिक-धार्मिक शिक्षा के अतिरिक्त व्यावसायिक शिक्षा के बारे में भी अपने विचार व्यक्त किये। उनके अनुसार व्यावसायिक शिक्षा वह शिक्षा है जो व्यक्ति को राज्य में किसी विशेष कार्य के योग्य बनाती है।[3] वेदकाल में प्रत्येक बालक को प्रायः माता-पिता की देख-रेख में व्यावसायिक शिक्षा दी जाती थी। जातिनुसार ब्राह्मण आध्यात्मिक, क्षत्रिय युद्ध तथा प्रशासन, वैश्य विभिन्न व्यवसाय तथा शूद्र सेवा-कार्य करते थे।[4]

एनी बेसेन्ट ने भारत की प्राचीन शिक्षा के साथ आधुनिक शिक्षा का भी गम्भीरता से अध्ययन किया तथा दोनों में तालमेल बिठाने का भरसक प्रयत्न किया। उनका मत था, 'पुनः एक ऐसा आदर्श अपनाना चाहिए जिसके द्वारा उसकी शिक्षा प्रणाली वर्तमान आवश्यकताओं तथा अन्य राष्ट्रों के बीच उसकी भी उच्च स्थिति के अनुकूल हो। क्या उसे उस आदर्श से अधिक उच्चादर्श मिल सकता है जो अतीत में उसका मार्गदर्शक था और जिसने उसे ऐसे प्राचीन काल में भी सुरक्षित रखा जिसका इतिहास केवल प्रकृति की स्मृति में, उसके प्राणियों के अभिलेखागारों में, अपने निजी

1. शम्भु शरण दीक्षित, *राष्ट्रीयता तथा भारतीय शिक्षा* (जालन्धर) पृ 66
2. एनी बेसेन्ट, *द एजुकेशन ऑफ़ द इण्डियन गर्ल्स*, (लन्दन, 1904), (पैम्फ्लैट नं 25)
3. एनी बेसेन्ट, *द स्कूल ब्वायज सिटिजन*, पृ 14
4. एनी बेसेन्ट, *इण्डिया हर कास्ट एण्ड फ्यूचर*, पृ 41

साहित्य में ही अवशेष है, एक ऐसा प्राचीन युग जिसका अनुमान इतिहास से नहीं लगाया जा सकता क्योंकि अभी तक उसके इतिहास के पहले का कोई इतिहास नहीं मिलता।'[1] एनी बेसेन्ट आधुनिक शिक्षा में प्राचीन भारतीय शैक्षणिक आदर्शों से प्रेरित थीं तथा उन्हें वर्तमान शिक्षा में लागू करने की पक्षधर थीं। वह प्राचीन शिक्षा के आदर्श छात्रों के लिए 'सादा जीवन तथा उच्च विचार' के सिद्धान्त को बड़ा महत्त्व देती थीं। उनका विचार था कि इससे छात्रों में भौतिक प्रलोभनों से दूर रहकर एकाग्र मन से अध्ययन होता है।

एनी बेसेन्ट ने शिक्षा के क्षेत्र में पश्चिमी अंधानुकरण की कटु आलोचना की। उनका विश्वास था कि भारत का उद्धार पश्चिमी प्रणाली का मरकट की भाँति अनुकरण करने से नहीं होगा बल्कि उसे अपने अतीत के आदर्शों का अनुसरण करना चाहिये। उन्होंने इसके लिए पाश्चात्य शिक्षा पर निर्भर न रहने को कहा। उन्होंने कहा, 'हमें यह विश्वास त्याग देना चाहिए कि पश्चिम की शिक्षा पूर्व के लिए आदर्शरूप है। यह बिल्कुल ठीक नहीं है। शरीर के कुछ भागों के लिए पश्चिम की सहायता ले सकते हैं, किन्तु आत्मा के लिए नहीं।'

एनी बेसेन्ट भारत के लिए एक ऐसी शिक्षा-प्रणाली की बात करती हैं जो भारतीय आदर्शों, भारतीय चेतना, भारतीय शक्ति, भारतीय संगठन, भारतीय संरचना, भारतीय उद्देश्य अर्थात् भारतीय जीवन से परिपूर्ण हो, तभी भारत अपनी वास्तविक स्थिति को प्राप्त कर सकता है।[2] एनी बेसेन्ट इसके लिए व्यावहारिक कठिनाइयों से भी भली-भाँति अवगत थीं। वह भारत के पुराने आदर्शों के प्रति आस्थावान् थीं तथा शनैः-शनैः लाना चाहती थीं। एक बार उन्होंने भारतीय विद्यार्थियों के समक्ष कहा, "तुम चार तत्त्वों से मिलकर बने हो; तुम्हारा शरीर जो तुम्हारे कार्य करने का यंत्र है; तुम्हारी भावनाएँ, जो तुम्हारी खुशियों और गमों की जड़ है; तुम्हारा मस्तिष्क जो तुम्हारे चरित्र का निर्माता है तथा तुम्हारी आत्मा जो तुम्हारे शरीर के अन्दर की शासिका है।"

उन्होंने वैदिक संस्कृति के आदर्शों के अनुरूप शिक्षा-पद्धति को चार भागों— शारीरिक, नैतिक, बौद्धिक तथा साहित्यिक व धार्मिक प्रशिक्षण— में

1. शम्भु शरण दीक्षित, पूर्वोद्धृत, पृ 47
2. एनी बेसेन्ट, *द फ्यूचर ऑफ़ यंग इण्डिया*, (अड्यार 1915), पृ 7



विभाजित किया। शारीरिक प्रशिक्षण के बारे में एनी बेसेन्ट के कहा[1], "जब तक युवा शारीरिक रूप से स्वस्थ नहीं है, वह व्यक्ति के रूप में जीवन तथा देश के लिए कुछ भी करने में असमर्थ है। शिक्षा में मस्तिष्क का जितना महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है, शारीरिक प्रशिक्षण भी उतना ही महत्त्व रखता है।" उन्होंने इसमें विचारों की शुद्धता, पौष्टिक भोजन, नित्य शारीरिक व्यायाम को महत्त्व दिया।

नैतिक प्रशिक्षण के बारे में उनका मत है, 'नैतिकता आपसी संबंधों में एकरूपता करनेवाला विकास है। भावनाओं के द्वारा वे आकर्षण पैदा होते हैं जिनसे परिवार, नगर, समुदाय और राष्ट्र का निर्माण होता है। भावनाएँ ही लोगों को एक राष्ट्र के रूप में बाँधने में सहायक होती हैं।[2]

एनी बेसेन्ट के अनुसार भारत में केवल बौद्धिक प्रशिक्षण ही होता है। परन्तु यह प्रशिक्षण अधूरा है। इससे शारीरिक, नैतिक तथा आत्मिक प्रशिक्षण नहीं होता। एनी ने स्वयं कहा है, 'बुद्धि के विकास से मनुष्य की प्रकृति के केवल एक छोटे से भाग का ही विकास होता है, जिसका नतीज़ा यह होता है कि आत्मिक तथा नैतिक चरित्र की उपेक्षा हो जाती है। समग्र शरीर कमज़ोर तथा बाधित हो जाता है।[3] परन्तु वह बौद्धिक प्रशिक्षण को बड़ा महत्त्व देती हैं। उन्होंने बौद्धिक प्रशिक्षण में विज्ञान की शिक्षा को जोड़ने को कहा।

उन्होंने बौद्धिक प्रशिक्षण में इतिहास की शिक्षा को बहुत महत्त्व दिया। उन्होंने भारत में अंग्रेज़ों द्वारा लिखित इतिहास न पढ़ने को कहा। उन्होंने लिखा, 'अंग्रेज़ों द्वारा लिखित इतिहास ही न पढ़ाया जाये, जिन्होंने भारत की धरती तथा रीति-रिवाजों की अवहेलना की, अपितु भारत का इतिहास देशभक्ति की भावनाओं से ओतप्रोत हो।'[4]

एनी बेसेन्ट ने नैतिक प्रशिक्षण के लिए पवित्र साहित्य, धर्म की शिक्षा देने को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया। उनके अनुसार, 'धर्म को जीवन से अलग नहीं समझना चाहिए तथा स्कूल में भी इसकी शिक्षा देना आवश्यक है। धर्म की शिक्षा से ही बलिदान की भावना उत्पन्न होती है। जिन लोगों ने देश की महानता के लिए कार्य

1. एनी बेसेन्ट, *एजुकेशन एज ए नेशनल ड्यूटी* (बनारस, 1903), पृ 10
2. *वही*, पृ 12
3. एनी बेसेन्ट, द *एंसियंट आइडियोलॉज़ी इन मॉडर्न लाइफ* (अड्यार, 1900) पृ 22; देखें एसृ एनृ चटर्जी, 'टाइम्स ऑफ़ स्पिरिट : एनीज ड्रीम', *द टाइम्स ऑफ़ इण्डिया*
4. एनी बेसेन्ट, *एजुकेशन इज द बेसिस ऑफ़ नेशनल लाइफ*, (अड्यार, 1908) पृ 17

किया, उनके आत्मिक पक्ष विकसित थे।[1]

उल्लेखनीय है कि एनी बेसेन्ट ने भाषा-ज्ञान के लिए मातृभाषा तथा संस्कृत को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान दिया। वह इसके विरुद्ध थीं कि बच्चों को प्रारम्भ से अंग्रेज़ी भाषा में शिक्षा दी जाये। उन्हें लगता था कि विदेशी भाषा में शिक्षा देकर अंग्रेज़ों ने एक ऐसे वर्ग का निर्माण किया है जो भारतीयता से हटकर विदेशी शासक का हिमायती बन गया है। उन्होंने भारतीय बच्चों को मातृभाषा में शिक्षा देने पर ज़ोर देकर कहा, "तभी भारत विश्वगुरु होने के अपने विगत गौरव को प्राप्त करके, राष्ट्र के रूप में पुनः उभरेगा व संसार को शिक्षा, विश्व-बन्धुत्व और शान्ति की ओर अग्रसर करेगा।"

संक्षेप में एनी बेसेन्ट पूर्व और पश्चिम के आदर्शों का समन्वय, पाश्चात्य विज्ञान तथा भारतीय आध्यात्मिकता का समन्वय तथा कम-से-कम खर्च में अधिक-से-अधिक ज्ञान देने की पक्षधर थीं। वस्तुतः वह तत्कालीन भारत की शिक्षण-पद्धति का भारतीयकरण करना चाहती थीं तथा इसका सबसे अच्छा क्षेत्र भी भारत में ही सम्भव था। परन्तु साथ ही वह पाश्चात्य शिक्षण के महत्त्वपूर्ण तत्त्वों को भी इसमें सम्मिलित करना चाहती थीं। वह शिक्षा पर सरकार के नियन्त्रण के विरुद्ध थीं। उनका मत था कि भारत में शिक्षा पर नियन्त्रण विदेशी ईसाई-मिशनरियों के अधीन है जिसका उद्देश्य भारतीयों में धर्म और देशभक्ति की भावना नष्ट करना है।

जिस भाँति भगिनी निवेदिता ने नवम्बर, 1898 में कोलकाता में एक कन्या-विद्यालय प्रारम्भ किया था, उसी प्रकार एनी बेसेन्ट ने अपने स्वप्न को साकार करने के लिए उसके भी लगभग चार मास पूर्व दिनांक 07 जुलाई, 1898 को बनारस में 'सेन्ट्रल हिंदू कॉलेज़' (Central Hindu College) की स्थापना की। बनारस चुनने का मुख्य कारण थियोसोफिकल सोसायटी की भारत का मुख्य केन्द्र होना तथा एनी बेसेन्ट का प्रारम्भ से बनारस से लगाव था। बाबू गोविन्द दास के छोटे घर में प्रारम्भ में केवल तीन कक्षाएँ– नवीं, दसवीं तथा ग्यारहवीं प्रारम्भ की गयीं। कॉलेज़ कुछ लोगों से चंदा करके प्रारम्भ किया गया। कॉलेज़ खोलने का एक प्रमुख उद्देश्य यह भी कि सरकारी कालेज़ों में धार्मिक तथा संस्कृत-शिक्षा नहीं दी जाती थी। प्रारम्भ से ही ध्यान रखा गया कि शिक्षा अत्यधिक सस्ती हो। शिक्षा का एक प्रमुख उद्देश्य लड़कों में अपनी मातृभूमि के प्रति स्नेह तथा बलिदान की भावना पैदा करना

1. एनी बेसेन्ट, *एजुकेशन इज ए नेशनल ड्यूटी*, पृ 13-14



था।

बहुत कम समय में एनी बेसेन्ट का कॉलेज़ विख्यात हो गया। समय-समय पर देश-विदेश के प्रमुख व्यक्ति भी इसे देखने आने लगे। उदाहरण के लिए 20 जुलाई, 1906 को प्रिन्स ऑफ़ वेल्स भारत आया। साथ ही देश-विदेश से अनुदान भी आने लगे।

केवल उक्त कॉलेज़ ही नहीं, एनी बेसेन्ट के मार्गदर्शन से भारत के विभिन्न भागों में अनेक स्कूलों तथा कॉलेज़ों का जाल-सा बिछ गया, जो अपने सांस्कृतिक वैशिष्ट्य के लिए प्रसिद्ध रहे। इसमें वीमेन्स कॉलेज़ (बनारस), ट्रेनिंग कॉलेज़ फ़ॉर टीचर्स (अड्यार, मद्रास), प्रताप हिंदू कॉलेज़ (श्रीनगर), कानपुर थियोसोफिकल हाई स्कूल (कानपुर), थियोसोफिकल गर्ल्स स्कूल (गोरखपुर) आदि प्रसिद्ध हैं।

यहाँ यह बताना उचित होगा कि एनी बेसेन्ट ने कन्या-शिक्षा के लिए प्रारम्भ से ध्यान दिया था। उन्हीं के प्रयत्नों से 1903 में इसकी रूपरेखा बनाई गई तथा 08 मार्च, 1905 को विधिवत् रूप से इसका प्रारम्भ हुआ था।[1]

कन्य-शिक्षा के बारे में एनी बेसेन्ट के विशद विचार थे जो उन्होंने एक पुस्तक में व्यक्त किए थे। वह लिखती हैं :

> 'भारत संसार के देशों में तब तक अपना स्थान नहीं पा सकता जब तक इस देश की माताएँ, जिनके घुटनों पर उनके बच्चे बड़े होते हैं, शिक्षा प्राप्त नहीं कर लेतीं। जब तक इन स्त्रियों को शिक्षा नहीं मिलती जिसके आधार पर वे घर को सुन्दर बना सकें तथा अपने पति तथा बच्चों को देश को तैयार करने में सहयोग दे सकें, तब तक कोई कैसे आशा कर सकता है कि भारत उन्नति करेगा ?'[2]

एनी बेसेन्ट कन्या-शिक्षा में धर्म की शिक्षा, प्राचीन साहित्य के ज्ञान को अत्यन्त महत्त्व देती थीं। वह चाहती थीं कि भारतीय कन्याओं के उनके अध्ययन में भारत की वीर महिलाओं का चित्रण हो। वह लड़कियों के लिए कला, संगीत तथा चित्रकला के ज्ञान को उच्च स्थान देती थीं। उनके स्वस्थ शरीर को बल देने के साथ स्कूलों में उनके लिए खेलों के प्रबन्ध को महत्त्व देती थीं। इसके अलावा गृहकार्यों में

1. एनी बेसेन्ट, *एजुकेशन ऑफ़ द इण्डियन गर्ल्स*
2. एनी बेसेन्ट, *इसेनशैल्स ऑफ़ इन इण्डियन एजुकेशन*, पृ 46

दक्ष, सफ़ाई, सुसज्जा में निपुण देखना चाहती हैं।

एनी बेसेन्ट ने विश्वविद्यालयीन शिक्षा के सन्दर्भ में राष्ट्रीय शिक्षा योजना की चर्चा 1905 से ही प्रारम्भ कर दी। उनकी शिक्षा-योजना सरकारी शिक्षा योजना से पूर्णतः भिन्न थी। इसमें भारतीय आदर्शों, भारतीय साहित्य की प्रमुखता, भारतीय जीवन से संबंधित वैज्ञानिक तथा तकनीकी पर आधारित शिक्षा थी। इसके साथ जब पाश्चात्य जगत् में लैटिन तथा ग्रीक-भाषाओं का महत्त्व दिया जाता, तब उन्होंने संस्कृत तथा अरबी को स्थान देने की बात की थी। एनी बेसेन्ट अपने कॉलेज़ को एक विश्वविद्यालय के रूप में विकसित करना चाहती थीं। उन्होंने 1907 में 'युनिवर्सिटी ऑफ़ इण्डिया' (University of India) स्थापित करने के लिए कई प्रभावशाली व्यक्तियों के हस्ताक्षर कराकर भारत सरकार के पास एक प्रार्थना-पत्र भी भेजा था। इसी समय सनातन धर्म महामण्डल ने भी दरभंगा-नरेश महाराजा रामेश्वर सिंह बहादुर (1898-1932) के नेतृत्व में एक विश्वविद्यालय बनाने का प्रस्ताव किया थ। तीसरे, महामना पं मदनमोहन मालवीय (1861-1946) ने भी काशीनरेश महाराज प्रभुनारायण सिंह (1889-1931) के नेतृत्व में सन् 1904 में विश्वविद्यालय की स्थापना का प्रस्ताव रखा। परन्तु बंग-भंग आन्दोलन से सभी योजनाएँ आगे नहीं बढ़ पा रही थीं।

एनी बेसेन्ट ने विश्वविद्यालय से संबंधित 1910 में अपनी योजना प्रकाशित की थी। भारत के वायसराय ने भी इस योजना को स्वीकृति दे दी थी। इसमे उच्चतर शिक्षा को सरकारी तंत्र से मुक्त रखने, विश्वविद्यालय से कॉलेज़ों की सम्बद्धता, भेदभावविहीन धार्मिक शिक्षा की अनिवार्यता; भारतीय इतिहास, दर्शन तथा साहित्य की प्रचुरता; हस्तकार्य तथा तकनीकी शिक्षा के विकास आदि के सुझाव थे। परन्तु योजना शीघ्र सफल न हो सकी; क्योंकि तभी अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय की स्थापना की मांग भी हो रही थी तथा उनके समर्थक इसमें बाधा डाल रहे थे।

अतः एकसाथ तीनों प्रकारों के प्रयास चलते रहे हैं। परन्तु 1911 में दरभंगा-नरेश तथा एनी बेसेन्ट ने अपने-अपने विश्वविद्यालय की योजना को मालवीय जी के हिंदू-विश्वविद्यालय की योजना में विलीन कर दिया।[1] अलीगढ़

1. प्रो देवेन्द्र प्रताप सिंह व प्रो श्याम सुन्दर शुक्ल, *धर्मपरायण महामना पंडित मदनमोहन मालवीय* (कुरुक्षेत्र, 2011), पृ 71



विश्वविद्यालय की मांग के कारण, योजना में कुछ परिवर्तन करने पड़े। अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के लिए आगा खाँ तृतीय (1877-1957), मोहम्मद अली ज़ौहर (1878-1931) व अन्य लीगी पहले से ही प्रयत्नशील थे। उन्होंने इसके लिए 20 लाख रुपये इकट्ठा भी कर लिए थे।[1] 1917 के शिक्षा में सरकारी कमीशन— सैडलर कमीशन ने भी एनी बेसेन्ट के कई सुझावों को स्वीकार किया। 1921 में उनके कार्यों, लेखों तथा भाषणों का उचित मूल्यांकन करते हुए काशी हिंदू विश्वविद्यालय ने उन्हें 'डॉक्टरेट' की उपाधि देकर सम्मानित किया। संक्षेप में एनी बेसेन्ट के भारत में सर्वाधिक योगदान शिक्षा के क्षेत्र में किया। उन्होंने स्कूल, कॉलेज़ तथा विश्वविद्यालय के सभी अंगों पर विचार किये। जहाँ उन्होंने वैदिक शिक्षा-प्रणाली को आधुनिक सन्दर्भ में रखने का प्रयत्न किया, वहीं उन्होंने मातृभाषा में शिक्षा, युवा के विविध गुणों का विकास, धार्मिक तथा नैतिक शिक्षा की अनिवार्यता तथा राष्ट्रीय शिक्षा योजना आदि में महत्त्वपूर्ण योगदान तथा दिशा दी। साथ ही उन्होंने यह आत्मविश्वास भी जाग्रत् किया कि सही शिक्षा नीति होने पर एक ही पीढ़ी भारत का नक्शा बदल सकती है।

एनी बेसेन्ट के प्रसिद्ध जीवनी-लेखक थियोडोर बेस्टरमैन (Theodore Deodatus Nathaniel Besterman : 1904-1976) ने लिखा है—

> 'भारतीय शिक्षा के प्रति अपूर्व योगदान पर केवल कुछ ही लोगों में इस प्रकार का साहस तथा धैर्य हो सकता है जैसा एनी बेसेन्ट में था, जिन्होंने अपने विचारों के विरुद्ध गम्भीर आलोचना सहते हुए भी अपनी मंज़िल को नहीं छोड़ा। वह केवल कॉलेज़ की स्थापना तक ही सीमित नहीं रहीं अपितु शिक्षा-संबंधी अपने विचारों को प्रसारित करने के लिए उन्होंने बहुत-सी पुस्तकें तथा लेख लिखे। छात्रों के शारीरिक विकास के लिए खेल-संस्थानों की स्थापना की। छात्रों के बौद्धिक विकास के लिए वाद-विवाद सभाएँ स्थापित कीं। इसलिए आज भारत में हज़ारों व्यक्ति उन्हें 'माँ' शब्द से सम्बोधित करते हैं।'[62]

1. स्नेह महाजन, *इम्पीरियल स्ट्रेजी एण्ड मॉडरेट पॉलिटिक्स : इण्डियन लेजिस्लेटिव एट वर्क (1909-1920)*, (दिल्ली, 1983), पृ 253
2. थियोडोर वैस्टमैन, *मिसेज एनी बेसेन्ट : ए मॉडर्न प्रोफेट* (लन्दन, 1934), पृ 198-99

## रात्रीय आन्दोलन में सक्रिय

एनी बेसेन्ट ने 1905 में बंग-भंग से भारत में ब्रिटिश सरकार के षड्यन्त्र का विरोध किया। उन्होंने स्वदेशी वस्त्र धारणकर राजनीतिक गतिविधियों में रुचि ली। बौद्धिक अस्त्र के प्रयोग से देश की स्वतन्त्रता के लिए मैदान में आनेवाली विदेशी मूल की यह महिला भारतीय नारी-शक्ति की ध्वजवाहिका तथा पथ-प्रदर्शक बन गयी।[1] एनी सन् 1912 से देश की प्रत्यक्ष राजनीति में आगे आयीं। वह राजनीतिक जीवन में भी शुचिता की पोषक थीं। उन्होंने आन्दोलन में कूदने से पूर्व सेन्ट्रल हिंदू कॉलेज़ में एक भाषण में कहा था कि पाश्चात्य लोकतंत्र का आधार ही भ्रष्टाचार है।[2] अतः 1915 में उन्होंने 'मद्रास पार्लियामेंट' को गठितकर भारतीयों को संसदीय तौर-तरीकों के बारे में प्रशिक्षित करने का प्रयास किया। उन्होंने दो प्रसिद्ध पत्रों– *'न्यू इण्डिया'* (*New India*, English Daily, published August 1914-May 1929) तथा 'कॉमनवील' (*Commonweal*, a weekly journal, published January, 02nd, 1914-March 1920) का प्रकाशन प्रारम्भ किया। उल्लेखनीय है कि *'कामनवील'* नाम से ब्रिटिश सरकार की भावी नीति 'कॉमनवेल्थ' (Commonwealth) प्रसिद्ध है जो आज भी कुछ ब्रिटिश उपनिवेश के सदस्य-मण्डल के लिए प्रयुक्त होता है।

एनी बेसेन्ट भारत की सक्रिय राजनीति में 1914 में आयीं। उन्होंने भारतीय राजनीति में प्रभावी रूप से परिवर्तन लाया।[3] उन्होंने ब्रिटिश साम्राज्यवाद की आलोचना, भारतीय स्वतन्त्रता का समर्थन तथा भारतीयों को अपने आदर्शों पर चलने को कहा। उन्होंने कहा कि भारत को अपने अधिकारों के रूप में नहीं, बल्कि कर्तव्य के रूप में शक्तिशाली बनाना चाहिए तथा प्रत्येक व्यक्ति समाज के समान हितों के लिए आगे आये।[4] उन्होंने बतलाया कि भारत में प्राचीन व्यवस्था भी कर्तव्यों पर निर्भर करती थी; परन्तु 19वीं तथा 20वीं शताब्दियों में सिद्धान्तों तथा व्यवहार में अन्तर आया। उन्होंने इसका प्रतिरोध किया कि अंग्रेज़ों ने भारत को तलवार से

1. मानवती आर्य्या, 'भारत-प्रेम की मिसाल : डॉ॰ एनी बेसेन्ट', *दैनिक जागरण*, 03 जनवरी, 2004
2. जयकृष्ण गौड़, 'राजनीतिक जीवन में शुचिता का यक्ष-प्रश्न', *नवोत्थान लेख-सेवा*, हिंदुस्थान समाचार, 14 जुलाई, 2010, पृ 4
3. जयप्रकाश मिश्र, पूर्वोद्धृत, पृ 271, (देखें राजकुमार का लेख)
4. *वही*, पृ 278



जीता या तलवार से ही नियन्त्रण रखा जा सकता था। वह अंग्रेज़ों द्वारा भारत की जीत का कारण भारत की स्थानीय परम्परागत शत्रुता के परिणामस्वरूप अंग्रेज़ों की सहायता करने तथा परस्पर के टकराव को मानती हैं।[1]

प्रथम महायुद्ध के कारण देश की बदलती हुई राजनीति को ध्यान में रखते हुए एनी बेसेन्ट ने 1907 में काँग्रेस की सूरत-फूट के पश्चात काँग्रेस के दोनों दलों– उदारवादी तथा राष्ट्रवादी– में समझौते का प्रयास किया। उन्होंने काँग्रेस के उदारवादियों से काँग्रेस के नियमों में संशोधन करने को कहा, ताकि राष्ट्रवादी भी उनके पक्ष में आ सकें। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी (1848-1925) व गोपाळ कृष्ण गोखले (1866-1915) को लगा कि प्रथम महायुद्ध के कारण, लोकमान्य तिळक (1856-1920) के विचारों में कुछ नरर्म आई है, उसका लाभ उठाया जाए तथा उन्होंने राष्ट्रवादियों के लिए काँग्रेस के द्वार खोल दिये। दोनों दलों में सुलह के लिए एनी बेसेन्ट व काँग्रेस के मंत्री एनृ सुब्बाराव (1856-1941) को यह उत्तरदायित्व दिया गया। दोनों लोग तिळक व गोखले से बातचीत के लिए पूना गये। उन दिनों गोखले बीमार थे। एनी बेसेन्ट स्वयं गोखले के सवेन्ट्स ऑफ़ इण्डिया सोसायटी के भवन में ठहरीं। वह तिळक को लेकर गोखले के पास गयीं। इस भेंट की विशेषता यह है कि एनी बेसेन्ट के प्रयत्नों से भारत के दो महान् नेताओं का वर्षों पश्चात् परस्पर साक्षात्कार हुआ। परन्तु सफलता न मिली।

सन् 1914 के काँग्रेस के चेन्नई-अधिवेशन में, जिसकी अध्यक्षता भूपेन्द्रनाथ बसु (1859-1924) ने की, विषय-समिति में दोनों दलों को मिलाने के सन्दर्भ में विचार हुआ; परन्तु अध्यक्ष ने जब गोखले का पत्र पढ़कर सुनाया तो एनी बेसेन्ट के प्रयासों को बड़ा धक्का लगा।[2] परन्तु कुछ बाद में गोखले की मृत्यु के पश्चात् ही यह सुलह हुई। तिळक ने एनी बेसेन्ट की गिरफ़्तारी पर उमड़े जनविरोध के उत्तर में कहा कि एनी बेसेन्ट के प्रति यदि हमें अपनी आत्मीयता प्रकट करनी है तो सबसे अच्छा उपाय यह है कि उन्हें काँग्रेस के आगामी अधिवेशन का अध्यक्ष चुना जाये।[3] अतः उन्हें 1917 के कोलकाता-अधिवेशन की अध्यक्षा बनाया गया था।[4]

1. जयप्रकाश मिश्र, पूर्वोद्धृत, पृ 279
2. इन्द्र विद्यावाचस्पति, *लोकमान्य तिलक और उनका युग*, पृ 173
3. *वही*, पृ 171
4. *वही*, पृ 174

प्रथम महायुद्ध (1914-'18) के कुछ वर्षों में काँग्रेस के उदारवादी नेता ब्रिटिश सरकार की तन-मन-धन से युद्ध में सहायता में लगे थे। अंग्रेज़-भक्ति दिखलाने की एक प्रकार से होड़ लगी थी। काँग्रेस के बड़े-से-बड़े नेता इसमें संलग्न थे। सरकार भी संकट की इस घड़ी में अंग्रेज़ सरकार की मदद करनेवालों को सम्मानसूचक पदों का वितरण कर रही थी। ऐसे समय में एनी बेसेन्ट ने होमरूल लीग के स्थापनाकर देश को स्वशासन की दिशा में अग्रसर किया। एनी बेसेन्ट ने युद्धकाल में काँग्रेस की दबाव न डालने की नीति से दुःखी होकर कहा, "मौका मिल जाने पर अंग्रेज़ भारत का धता बता देंगे।"

शीघ्र ही उन्होंने अपने होमरूल-आन्दोलन की स्थान-स्थान पर शाखाएँ स्थापित कीं। इस आन्दोलन का मुख्य उद्देश्य सरकार पर दबाव डालकर स्वशासन की स्थापना, भारतीय राजनीति में उग्रधारा क्रान्तिकारी विचारों को रोकना, भारतीय राजनीति की शिथिलता को समाप्त करना तथा यह भी बतलाना था कि भारत में गृहशासन की स्थापना अंग्रेज़ सरकार के हित में होगी।[1]

एनी बेसेन्ट ने स्वयं कहा, "राजनैतिक सुधारों से हमारा अभिप्राय ग्राम-पञ्चायतों से लेकर ज़िला नगरपालिका और प्रांतीय व्यवस्थाओं तथा राष्ट्रीय संसद् के रूप में स्वशासन की स्थापना है। इसी राष्ट्रीय संसद् के अधिकार स्वशासित उपनिवेशों की व्यवस्थाओं के समान होंगे। उन्हें नाम चाहे जो भी दिया जाए, किन्तु जब ब्रिटिश सम्राज्ञी की संसद् में स्वशासित राज्यों के प्रतिनिधि लिए जाएँ, तो भारत का प्रतिनिधित्व भी इस संसद् में होगा।"[2]

एनी बेसेन्ट ने घोषणा की, "मैं भारत में बैतालिक का कार्य कर रही हूँ और सब सोनेवालों को जगा रही हूँ। ताकि वे उठ बैठें तथा अपनी मातृभूमि के लिए कार्य करें।[3] शीघ्र ही उनका आन्दोलन सम्पूर्ण देश में दावानल की भाँति फैल गया।[4] उनके इस आन्दोलन में मुसलमानों तथा राष्ट्रवादी नेताओं ने भी सहयोग दिया।[5] सारे देश में विरोध हुआ तथा रोष-सभाएँ हुईं। मुहम्मद अली ज़िन्ना (1876-1948) ने

1 प्रताप सिंह, *आधुनिक भारत (1906-1950)*, दिल्ली, पृ 24
2. एनी बेसेन्ट, *इण्डिया बाऊंड ऑर फ्री*, पृ 161-63
3. प्रताप सिंह, पूर्वोद्धृत, पृ 24-25
4. इन्द्र विद्यावाचस्पति, पूर्वोद्धृत, पृ 182; सुभाष काश्यप, *सांविधानिक विकास और स्वाधीनता संघर्ष*, पृ 73
5. एचृ एचृ डाडवैल, *द शॉर्टर कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया* (कैम्ब्रिज, 1934), पृ 898



भी भाग लिया। सर एसृ सुब्रह्मण्यम अय्यर (1842-1924) ने एनी की गिरफ़्तारी के विरोध में 'सर' की उपाधि त्याग दी।[1]

इससे भयभीत होकर तमिलनाडु के तत्कालीन गवर्नर लॉर्ड पैण्टलैण्ड (John Sinclair, Baron Pentland : 1912-1919) ने विधानसभा के अधिवेशन के उद्घाटन-भाषण में आनेवाले 'भूकम्प' की पूर्व सूचना देते हुए कहा कि आशा है, सुरक्षा और शान्ति की रक्षा के लिए सरकार जो कदम उठाएगी, जनता उसका साथ देगी।[2] सरकार ने पूरी तरह से दमन-नीति का सहारा लिया। उनके पत्र *'न्यू इण्डिया'* तथा *'कॉमनवील'* से भारी ज़मानतें मांगी गयीं।[3] कुल मिलाकर एनी बेसेन्ट को 20,000 रुपये ज़मानत के रूप में जमा करने पड़े। आन्दोलन से डरकर बम्बई तथा मध्यभारत (Central Provinces) प्रांतों में एनी बेसेन्ट के आने पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। बाद में यह प्रतिबन्ध नीलगिरी क्षेत्र पर भी लागू हुआ।[4] जहाँ आन्दोलन ने भारतीय मस्तिष्क को आन्दोलित किया, वहाँ 1857 के विद्रोह के ब्रिटिश के दृढ़ निश्चय को भी हिला दिया।[5] होमरूल-आन्दोलन में तिळक व एनी बेसेन्ट– दोनों के आन्दोलनकारी बड़ी संख्या में जेल में डाल दिए गये। तिळक के प्रति भी कठोर नीति अपनाई गयी। एनी बेसेन्ट व उसके सहयोगियों को गिरफ़्तार कर लिया गया तो आन्दोलन दावानल की तरह भड़क उठा। चारों ओर एनी बेसेन्ट व अन्य आन्दोलनकारियों को छोड़ने की मांग की गयी। इस आन्दोलन के प्रमुख नेता एनी बेसेन्ट, लोकमान्य तिळक, जॉर्ज़ सिडनी अरुंडले (George Sidney Arundale : 1878-1945), बीृ पीृ वाडिया (1881-1958), सीृ वाईृ चिन्तामणि (1880-1941), नरसिंह चिन्तामण केळकर (1872-1947), जोसेफ बेप्टिस्टा (Joseph "Kaka" Baptista : 1864-1930) थे।

एनी बेसेन्ट एवं तिळक द्वारा चलाए गए आन्दोलन के विशिष्ट परिणाम हुए। इसने सोते हुए भारतीयों को जगाया तथा उनमें अपूर्व जागृति लाई, समूचा देश नये विचारों से आन्दोलित हो उठा और नवजीवन से भर उठा जैसा इससे पहले नहीं

1. टीृ वीृ पार्वते, *बालगंगाधर तिलक*, पृ 404
2. इन्द्र विद्यावाचस्पति, पूर्वोद्धृत, पृ 184
3. टीृ वीृ पार्वते, पूर्वोद्धृत, पृ 370
4. एचृ एचृ डाडवैल, पूर्वोद्धृत, पृ 898
5. *वही*, पृ 899

हुआ था।[1] आन्दोलन सफल हुआ तथा इसने सरकार को नयी सुधार-योजना को लागू करने पर विवश किया। सरकार के भयंकर दमन, गिरफ़्तारियों, पत्रों पर अंकुश के पश्चात् भी सरकार को झुकना पड़ा। वस्तुतः होमरूल-आन्दोलन से समूचे भारत में अनेक स्थानों पर समितियों की स्थापना हुई। यह सामूहिक आन्दोलन का प्रथम महती प्रयास था। इससे महात्मा गाँधी को भावी मार्ग मिल गया। संगठन का ताना-बाना तैयार था तथा सामूहिक आन्दोलन की तीव्रता को भी उन्होंने देखा, जिसका प्रयोग उन्होंने प्रथम बार असहयोग आन्दोलन में किया। सभी नेताओं को छोड़ दिया गया। युद्ध की स्थिति को देखते हुए भारतमंत्री मांटेग्यू (Edwin Samuel Montagu : 1879-1924) ने 20 अगस्त, 1917 की प्रसिद्ध घोषणा की, जिसमें शनैः-शनैः उत्तरदायी सरकार के विकास का वचन दिया तथा नवम्बर, 1917 में वह स्वयं भारत आया। इस घोषणा से आन्दोलन शिथिल हो गया।

सन् 1917 में एनी बेसेन्ट भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस के कोलकाता-अधिवेशन की अध्यक्षा बनाई गयीं। काँग्रेस के इतिहास में वह पहली विदेशी महिला थीं जिन्हें इतना सम्मान दिया गया। अध्यक्षा पद से उन्होंने अपने भाषण में कहा—

> "यह देखने के लिए कि भारत स्वतन्त्र हो, वह राष्ट्रों के बीच अपना सर ऊँचा कर सके, उसके पुत्रों और पुत्रियों का सर्वत्र सम्मान हो, वह अपने शक्तिशाली अतीत के योग्य बने और उससे अधिक शक्तिशाली भविष्य के निर्माण में संलग्न हो— क्या यह आदर्श इस योग्य नहीं है कि उसके लिए कार्य किया जाए, उसके लिए कष्ट सहे जाएँ और उसके लिए जीवन धारण किया जाए तथा मृत्यु का आलिंगन किया जाए ?..... राष्ट्रों के बीच भारत सूली पर चढ़ाया हुआ राष्ट्र है, किन्तु सहस्रों वर्षों के पश्चात् आज वह पुनर्जीवन की वेला में अमर गौरवशाली और चिर तरुण होकर उठ खड़ा हुआ है और शीघ्र ही हम भारत को गर्वीला, आत्मविश्वासी, शक्तिशाली तथा स्वतन्त्र देखेंगे। वह एशिया का वैभव और विश्व का प्रकाश तथा वरदान बनेगा।"[2]

शीघ्र ही मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड योजना (Montagu-Chelmsford Reforms) 1918 में प्रकाशित हुई, परन्तु भारत की जनता को लगा कि 'खोदा

1. के॰ वी॰ पुन्निया, *द कॉन्स्टीट्यूशनल हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया*, पृ॰ 142
2. दिनेश चन्द्र भारद्वाज, *आधुनिक भारतीय संस्कृति का इतिहास*, (लखनऊ, 1977), पृ॰ 253



पहाड़ मिली चुहिया'। प्रथम महायुद्ध में काँग्रेस के पूरे सहयोग तथा समर्थन के बाद भी ब्रिटिश सरकार के आश्वासनों के प्रति गहरा निराशा हुई। इसके प्रकाशन होते ही, उसी दिन एनी बेसेन्ट ने इसे इंग्लैण्ड द्वारा प्रदत्त के अयोग्य तथा भारत द्वारा स्वीकृत करने के अयोग्य[1] बताया। काँग्रेस-अधिवेशन में इस योजना की कटु आलोचना हुई। इसे 'अपर्याप्त, निराशाजनक तथा असन्तोषजनक' ('inadequate, disappointed and unsatisfactory') कहा गया। काँग्रेस के अमृतसर-अधिवेशन में, जिसकी अध्यक्षता पं॰ मोतीलाल नेहरू (1861-1931) ने की, काँग्रेस की विषय-समिति दो गुटों में बँट गयी। एक गुट में पं॰ मोतीलाल नेहरू, एनी बेसेण्ट थे तथा दूसरे गुट में बाळगंगाधर तिळक, विपिन चन्द्र पाल (1858-1932), चितरंजन दास (1870-1950), एस॰ सत्यमूर्ति (1887-1943) तथा कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी (1887-1971)[2]। चितरंजन दास ने योजना के लिए 'अपर्याप्त, असन्तोषजनक तथा निराशाजनक' का प्रस्ताव रखा। परन्तु गाँधी जी ने उक्त प्रस्ताव से 'निराशाजनक' हटाकर उसमें एक अन्य पैराग्राफ जोड़ा। आख़िर कुछ संशोधन के साथ प्रस्ताव पारित हुआ।[3] इस भाँति विषय-समिति में एक प्रस्ताव, जिसमें जालियाँवाला बाग़ के हत्याकाण्ड (13 अप्रैल, 1919) तथा पागलपन से उन्मत्त अमृतसर-दंगों में भीड़ की कटु आलोचना की गयी। इसमें विषय-समिति के प्रस्ताव के दूसरे भाग की कटु आलोचना की गयी। इस पर यह झूठा अनुमान लगाया गया कि यह ब्रिटिश-समर्थक प्रस्ताव एनी बेसेन्ट द्वारा तैयार किया गया है।[4] एक पंजाबी नेता ने इसी प्रकार का भाव व्यक्त करते हुए कहा कि भारत माँ से उत्पन्न कोई भी व्यक्ति ऐसे प्रस्ताव की रचना कर ही नहीं सकता।[5] अतः प्रस्ताव का दूसरा भाग हटा दिया गया। परन्तु वास्तव में इस प्रस्ताव का दूसरा भाग स्वयं गाँधी जी के द्वारा तैयार किया था जिसे गाँधी जी ने स्वीकार किया।[6]

दुर्भाग्य से एनी बेसेन्ट के प्रति इस दुष्प्रचार को और अधिक बढ़ावा मिला

1. एस॰ सी॰ मित्तल, *फ्रीडम मूवमेंट इन पंजाब (1905-1929)*, दिल्ली, 1977, पृ॰ 111; एच॰ एन॰ दास, *देशबन्धु चितरंजनदास* (दिल्ली, 1965), पृ॰ 55
2. के॰ एम॰ मुंशी, *पिलग्रीमेज़ टू फ्रीडम* (मुम्बई, 1967), पृ॰ 16
3. पट्टाभि सीतारमैया, *हिस्ट्री ऑफ़ इण्डियन नेशनल काँग्रेस (1885-1935)*, भाग 1, (दिल्ली, 1969), पृ॰ 179
4. के॰ एम॰ मुंशी, पूर्वोद्धृत, पृ॰ 16
5. एस॰ सी॰ मित्तल, *फ्रीडम मूवमेन्ट इन पंजाब*, पृ॰ 146
6. महात्मा गाँधी, *द कलक्टेड वर्क्स ऑफ़ एम॰ के॰ गाँधी*, भाग 17, पृ॰ 465-66

जब सितम्बर, 1920 में कोलकाता का असहयोग आन्दोलन के सन्दर्भ में विशेष अधिवेशन बुलाया गया। इस अधिवेशन की अध्यक्षता लाला लाजपत राय (1865-1928) ने की थी जो पाँच साल बाद अमेरिका से लौटे थे। गाँधी जी के अहिंसक असहयोग आन्दोलन के प्रस्ताव पर वोटिंग हुआ जिसमें इसके समर्थन में 1,855 तथा विरोध में 873 वोट पड़े।[1] प्रस्ताव के विरुद्ध वोट डालनेवालों में काँग्रेस के प्रायः पुराने नेता थे, जैसे– मदनमोहन मालवीय, विपिन चन्द्र पाल, चितरंजन दास, एनी बेसेन्ट तथा स्वयं उस अधिवेशन के अध्यक्ष लाला लाजपत राय।[2] इन नेताओं के हृदयों में काउंसिलों और अदालतों के बहिष्कार की योजना के प्रति बिल्कुल सहानुभूति न थी।

एनी बेसेन्ट ने 1917 से आगे तीन-चार वर्षों तक देश की राजनीति में बढ़-चढ़कर भाग लिया। उन्होंने खिलाफत आन्दोलन (1919-'24) की भी आलोचना की। उन्होंने मुस्लिम तुष्टीकरण की नीति का विरोध किया। उन्होंने लिखा, 'गम्भीर प्रश्न भारत के मुसलमानों का है। हमने यह पाठ सीख लिया है कि उनकी इच्छा भारत में खुदा का रूप स्थापित करना है।'[3] परन्तु उन्होंने महात्मा गाँधी के 1919 में राजनीति में सक्रिय पदार्पण तथा असहयोग नीति से असंतुष्ट होकर भारत की सक्रिय राजनीति से संन्यास ले लिया। यद्यपि 1924 में वह काँग्रेस के बेलगाँव-अधिवेशन में, जिसकी अध्यक्षता महात्मा गाँधी ने की थी, गाँधी जी का भाषण सुनने के तुरन्त बाद लौट गई थीं।

एनी बेसेन्ट के बारे में यह कथन महत्त्वपूर्ण तथा सार्थक होगा कि उनकी भारत-राष्ट्र की कल्पना, किसी भी राजनैतिक नेता की अपेक्षा अधिक सटीक तथा ऐतिहासिक तथ्यों पर आधारित थी। अनेक ब्रिटिश इतिहासकारों ने 19वीं तथा 20वीं शती के प्रारम्भ तक भारत को एक महाद्वीप या उपमहाद्वीप या 'एक बनता हुआ राष्ट्र' ही कहा है। काँग्रेस के अनेक तत्कालीन नेता भी वही भाषा बोल रहे थे। परन्तु एनी बेसन्ट ने इसका प्रतिवाद किया। उन्होंने भारत को एक दृढ़ राष्ट्र के रूप में सर्वदा सम्बोधित किया।

1. अलगू राय शास्त्री, *लाला लाजपतराय* (प्रयाग, 1957), पृ 343; *कलक्टैड वर्क्स ऑफ़ एमृ कृे गाँधी*, भाग 18, पृ 260
2. जवाहरलाल नेहरू, *एन ऑटोबायोग्राफ़ी* (लन्दन, 1958), पृ 63
3. एनी बेसेन्ट, *फ्यूचर ऑफ़ इण्डियन पॉलिटिक्स*



संक्षेप में एक विद्वान् के शब्दों में,

'एनी बेसेन्ट की भारत-राष्ट्र की कल्पना के बारे में कहा जा सकता है, 'जिस समय भारत स्वराज्य तथा होमरूल के लिए संघर्ष कर रहा था, जब राष्ट्रवाद के विरुद्ध संगठित शक्तियाँ कहीं अधिक प्रचण्ड थीं और जब अनेक भविष्यवक्ता भारत के राष्ट्र होने के दावे को ही चुनौती दे रहे थे, उस समय राष्ट्रवाद के संबंध में धार्मिक और आध्यात्मिक मार्ग अपनाकर बेसेन्ट ने भारतीय राजनीति की सराहनीय सेवा की..... बेसेन्ट यह मानने को तैयार नहीं थीं कि भारत को राष्ट्र बनने का पाठ पश्चिम ने सिखाया था। वह अतीत से ही एक राष्ट्र था। उसके सम्पूर्ण साहित्य, दर्शन और कलाओं में जीवन्त राष्ट्रीय भावना की गहरी तथा व्यापक तरंग विद्यमान रही है। विश्व में अनेक सभ्यताओं का उदय हुआ, किन्तु कालान्तर में वह भूमिस्तान हो गयीं। किन्तु भारत अपने धार्मिक स्रोतों के प्रति वफ़ादार बना रहा। इसलिए उसकी प्राणशक्ति अक्षुण्ण रही और वह अपनी खोई हुई शक्ति को पुनः प्राप्त करने के योग्य बना रहा।'[1]

संक्षेप में एनी बेसेन्ट के भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन के योगदान के बारे में कहा जा सकता है कि उन्होंने 1914 में भारतीय राजनीति में प्रवेश किया। उन्होंने राजनीति की उदासीनता को दूर किया। उन्होंने भारतीय राजनीति को एक नवमार्ग सोचने को कहा।[2] होमरूल आन्दोलन की वह ही मुख्य ऊर्जा थीं।[3] उन्होंने समकालीन राजनीतिक परिस्थितियों से भारतीयों को लाभ उठाने के लिए ललकारा। उन्होंने अंग्रेज़ों की आवश्यकता को भारत का सुअवसर बतलाया[4] तथा अंग्रेज़-भारतीय संबंधों को झकझोर दिया।

निःसन्देह एनी बेसेन्ट भी भगिनी निवेदिता की भाँति ब्रिटिश सरकार की क्रूर दृष्टि का शिकार रहीं। उन्हें भी ब्रिटिश राष्ट्र के प्रति द्रोही के रूप में देखा गया।[5] आश्चर्य यह है कि काँग्रेस के कुछ नेताओं ने उनके चरित्र-हनन के निष्फल प्रयत्न किये।

1. दिनेश चन्द्र भारद्वाज, पूर्वोद्धृत, पृ 253
2. जयप्रकाश मिश्र, पूर्वोद्धृत, पृ 280
3. स्नेह महाजन, पूर्वोद्धृत, पृ 114
4. एनी बेसेन्ट, *इण्डिया एण्ड एम्पायर* (लन्दन, 1914), पृ 3
5. मार्गरिट मैकमिलन, *वीमेन ऑफ़ द राज* (न्यूयॉर्क)

इसमें कोई सन्देह नहीं कि देश के सभी बड़े नेताओं ने एनी बेसेन्ट की भारतीय राजनीति में योगदान की बड़ी प्रशंसा की। जहाँ तिळक ने पहले ही उनको 1917 के काँग्रेस-अधिवेशन के सर्वोच्च पद काँग्रेस-अध्यक्ष बनने की कामना साकार रूप में देखी, वहाँ महात्मा गाँधी ने एनी बेसेन्ट के बारे में श्रद्धापूर्वक कहा, "जब तक भारतवर्ष जीवित है, तबतक एनी बेसेन्ट की सेवाएँ भी जीवित रहेगीं, जो उन्होंने इस देश के लिए की थीं। उन्होंने भारत को अपनी जन्मभूमि मान लिया था। उनके पास देने योग्य जो कुछ भी था, उसे उन्होंने भारत के चरणों पर चढ़ा दिया। इसलिए वह भारतवासियों की दृष्टि में प्यारी और श्रद्धेय हो गयीं।"[1]

दिनांक 20 सितम्बर, 1933 को चेन्नई में एनी बेसेन्ट ने अन्तिम साँस ली। निःसन्देह उनकी जन्मभूमि लन्दन थी, पर उनकी कर्मभूमि भारत थी। उनका नाम और काम भारत की सेवाव्रती महिलाओं के लिए एक चिरस्थायी दीपस्तम्भ बना रहेगा। एक बार उन्होंने कहा था कि मेरी समाधि पर कुछ भी अन्यत्र लिखने के बजाय केवल 'वह सत्य की अनुगामी के लिए प्रयत्नशील थी' ('She tried to follow truth')– लिखा जाये।[2]

1. मानवती आर्य्या, पूर्वोद्धृत; दिनेशचन्द्र भारद्वाज, पूर्वोद्धृत, पृ 252
2. एमृ एनृ चटर्जी, पूर्वोद्धृत

**श्रीमाँ ( मिर्रा अल्फासा रिचर्ड )**

(21 फरवरी, 1878–17 नवम्बर, 1973)

## अध्याय : तीन

# श्रीमाँ

महर्षि अरविन्द ने जिस विदुषी को चार दिव्य मातृत्व शक्तियों, अर्थात् महेश्वरी (ज्ञान की शक्ति), महाकाली (बल और ऊर्जा की शक्ति), महालक्ष्मी (सामञ्जस्य और सुन्दरता की शक्ति) तथा महासरस्वती (कर्म तथा सेवा की शक्ति) से युक्त बताया है, वह हैं श्रीमाँ, जो आध्यात्मिक जगत् में इसी नाम से विख्यात हैं।[1] श्रीअरविन्द ने उन्हें अपनी शिष्या नहीं, 'माता की चेतना' कहा। कहा कि एक ही दिव्य चेतना दोनों में काम कर रही है।[2]

श्रीमाँ का जन्म 21 फरवरी, 1878 को पेरिस (फ्रांस) में हुआ था। इनका असली नाम 'मिर्रा अल्फासा' (Blanche Rachel Mirra Alfassa) था। इनके पिता एक तुर्की यहूदी मॉरिस अल्फासा (Moïse Maurice Alfassa : 1843-1918) एक बैंकर थे तथा माता मथिल्डे इस्मालुन (Mathilde Ismalun : 1857-1944) एक मिस्री यहूदी थीं। दोनों का विवाह मिस्र में हुआ। इसके पश्चात् दोनों पेरिस आकर बस गए थे।

1. एमृ पी्र पण्डित, *श्रीअरविन्द*, पृ 270; कुछ व्यक्तियों ने यह एतराज किया कि विदेशी महिला को माँ को कहा जाये। इस पर श्रीअरविन्द ने एक लेखमाला 'माता से चार शक्तियाँ' लिखी, जो बाद में *'श्रीअरविन्द : इटर्निटी डेलीगेट'* (पाण्डिचेरी, 1928) शीर्षक से छपी।
2. *वही,* पृ 370



मिर्रा अल्फासा का बचपन दिव्य अनुभूतियों से परिपूर्ण था।[1] वह एक जन्मजात योगिनी थीं।[2] जब वह आयु में बहुत छोटी थीं, तभी से उन्हें असाधारण स्वप्न, अंतर्दर्शन और आध्यात्मिक अनुभव हुआ करते थे।[3] बचपन में ही उन्होंने संगीत तथा चित्रकला में दक्षता प्राप्त कर ली थी। जब वह केवल तेरह वर्ष की थीं, तो उन्हें अनुभव हुआ, 'जब पलंग पर सोने जाती तो ऐसा लगता कि अपने शरीर से बाहर निकल आई हूँ।[4] अपने आपको एक सुन्दर चोगा पहले देखती और लोग दुःख-दर्द की कहानी सुनाते, सहायता मांग रहे हैं और वे चोगे के स्पर्श से रोगमुक्त हो जाते तथा अपने अन्दर अद्भुत शक्ति का अनुभव करते'।[5]

चौदह वर्ष की आयु में उन्होंने चित्रकला में विशिष्टता प्राप्त की। 1893 में वह अपनी माँ के साथ वेनिस (Venice, northeastern Italy) गयीं। वेनिस में डोगेज़ पैलेस (Doge's Palace) गईं जहाँ उन्हें वह अतीत का दृश्य लगा। सन् 1903-'06 के दौरान उन्होंने अपनी चित्रकला का प्रदर्शन पेरिस सैलून (Salon de la Société Nationale des Beaux-Arts) में किया।[6] वह पेरिस के कला-क्षेत्र में शीघ्र प्रसिद्ध हो गयीं। वह नृत्य तथा अभिनय में भी दक्ष थीं। उन्हें कॉमेडी फ्रांसेस में नाट्यशाला में अभिनय के लिए बुलाया गया था।

बीस वर्ष की आयु में उनका विवाह पेरिस के एक कलाकार हेनरी मॉरिसेट (François Henri Morisset : 1870-1956) के साथ हुआ जिससे पुत्र आन्द्रे (André Morisset : 1898-1982) का जन्म हुआ। परन्तु मार्च, 1908 में मिर्रा ने अपने पति से संबंध-विच्छेद कर लिया। उन्होंने अपना मन कला की अभिव्यक्ति तथा आध्यात्मिक ज्ञान में लगाया। वह संगीत तथा चित्रकला में जहाँ प्रसिद्ध होती गईं, वहाँ आध्यात्मिक व बौद्धिक क्षेत्र में अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हो गयीं। आगस्टस

1. नोलिमा दास (संपादिका) *ग्लिमसेज ऑफ़ द मदर्स लाइफ़,* भाग 1 (पाण्डिचेरी, 1978), पृ 14; मिर्रा अल्फासा, *मदर ऑन हरसेल्फ* (पाण्डिचेरी, 1977), पृ 3-4
2. देखे लेख 'श्रीमाँ, अरविन्द आश्रम, पाण्डिचेरी', *राष्ट्रधर्म,* 03 मई, 2006, पृ 6
3. *बुलेटिन ऑफ़ श्रीमाँ श्रीअरविन्द सेन्टर ऑफ़ एजुकेशन,* पृ 14; देखें *कलक्टेड वर्क्स ऑफ़ द मदर,* भाग 12 (पाण्डिचेरी, प्र्र सूं 1978; द्वितीय संस्करण 2002; मिर्रा अल्फासा, पूर्वोद्धृत, पृ 17-18
4. *बुलेटिन ऑफ़ श्रीअरविन्द एजुकेशन सेन्टर,* (पाण्डिचेरी, 1974), पृ 63
5. मिर्रा अल्फासा, पूर्वोद्धृत, पृ 18-19; नोलिमा दास, पूर्वोद्धृत पृ 27, 30, 253
6. नोलिमा दास, पूर्वोद्धृत, पृ 9, 27 30, 253

रेनाल्त (François-Auguste-René Rodin : 1840-1917) व मोनेट (Oscar-Claude Monet : 1840-1926)-जैसे कलाकार उनके मित्र बने।[1] इस काल में उन्होंने अनेक पुस्तकों का अध्ययन किया। अध्यापकों से विचार-विमर्श किये। संस्कृत-भाषा से प्रेम बढ़ा। वेदोपनिषद् तथा सूत्र-साहित्य पढ़ा। 1904 में एक भारतीय ऋषि ज्ञानेन्द्रनाथ चक्रवर्ती से उनकी भेंट हुई जिन्होंने मिर्रा को *भगवद्गीता* का अनुवाद भेंट किया। स्वामी विवेकानन्द का *राजयोग* (*'Raja Yoga*', 1896) पढ़ा। भगवान् कृष्ण के प्रति आसक्ति बढ़ी।[2] ध्यानावस्था में अनेक आध्यात्मिक व्यक्तियों से भेंट अनुभव हुई।

सन् 1905 के आसपास उनका परिचय एक यहूदी साधु मैक्स थेओं (Max Théon : 1848-1927) तथा उनकी पत्नी अल्मा थेओं (Alma Theon : 1843-1908) से हुआ, जो सहज साधना के पार जाकर गुह्यविद्या (occultism) का शास्त्रीय ज्ञान देते थे। मिर्रा इसका अध्ययन करने के लिए अल्जीरिया (Algeria, North Africa) के लेमसेल (Tlemcen) नगर गयीं।[3] इस साधना में अपनी व्यवहारिक निष्ठा से वह थेओं-परिवार की साधना से भी आगे पहुँच गयीं। इसी साधना से मिर्रा ने सूक्ष्मलोक के जीवों, भूत-प्रेत, यक्ष, गन्धर्व आदि को वश में करना तथा शरीर के बिना बाहरी साधन सञ्चारित करने की सिद्धि प्राप्त की। परन्तु उन्होंने इस साधना का व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए प्रयोग नहीं किया, न ही इसका लाभ उठाया।

पहले विवाह के संबंध-विच्छेद के लगभग दस-ग्यारह वर्षों के पश्चात् दिनांक 05 मई, 1911 को मिर्रा ने एक फ्रांसीसी दार्शनिक तथा आध्यात्मिक पुरुष पॉल एंटोनी रिचर्ड (Paul Antoine Richard : 1874-1967) से पुनर्विवाह किया। मिर्रा के घर में अनेक जिज्ञासुओं का आना होता था तथा उनको भी तत्कालीन आध्यात्मिक व्यक्तियों के दर्शन तथा उनके प्रवचन सुनने का अवसर

1. सुजाता नाहर, *मदर्स क्रॉनिकल्स* (मैसूर, 1986)
2. कलेक्टेड वर्क्स ऑफ़ द मदर, भाग 6 (क्योशचंस एण्ड आंसर्स) (पाण्डिचेरी, 1954)। श्रीमाँ के विचार *कलेक्टेट वर्क्स ऑफ़ द मदर* के 17 भागों में हैं जिसमें नौ भाग बातचीत तथा आठ भाग प्रार्थना, विचार, पत्र तथा उनके प्रवचनों पर हैं। ये ग्रन्थ 1912 से उनके विचारों को व्यक्त करते हैं। इनका पहला प्रकाशन 1978 तथा तत्पश्चात् 2002 में हुआ।
3. श्रीमाँ, रेज़ ऑफ़ लाइट, *सेलेक्टेड सेइंग्स ऑफ़ मदर* (पाण्डिचेरी, 1997), ये सभी कथन श्रीमाँ के *कलेक्टेड वर्क्स* के भाग 14 व 15 से लिए गए हैं, पृ 177



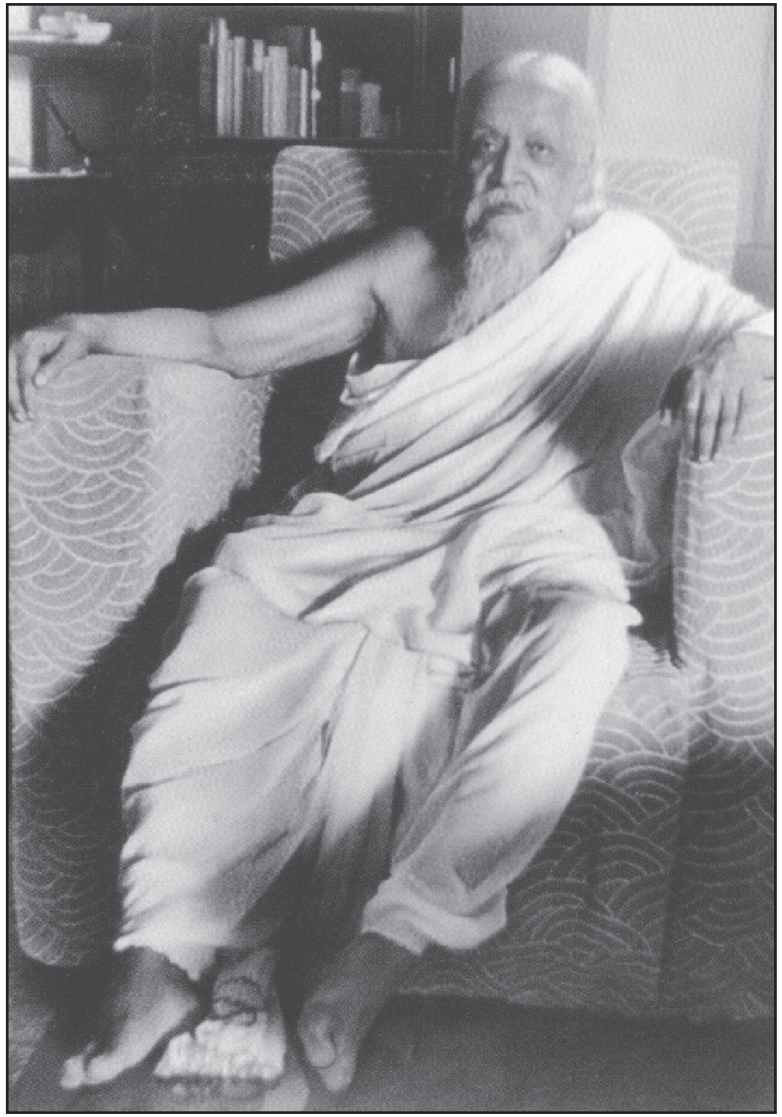

**श्रीमाँ के आध्यात्मिक गुरु : महायोगी श्रीअरविन्द (1872-1950)**

मिलता था।

सन् 1910 में पॉल रिचर्ड अकेले भारत आये। यहाँ पाण्डिचेरी (अब

**मिर्रा रिचर्ड (श्रीमाँ) (बाएँ से चौथी), पॉल रिचर्ड, पीयरसन और रवीन्द्रनाथ ठाकुर (जापान, जून, 1916)**

'पुदुच्चेरी') में उनकी भेंट महर्षि अरविन्द (1872-1950) से हुई। पॉल को लगा कि महर्षि अरविन्द, मिर्रा के मार्गदर्शक हो सकते हैं। पॉल श्रीअरविन्द के चित्र के साथ फ्रांस लौटे। अगले चार वर्षों तक उनका महर्षि से अनेक भौतिक तथा आध्यात्मिक विषयों पर पत्र-व्यवहार हुआ।



## मिर्रा का भारत-आगमन

आख़िर 08 मार्च, 1914 को मिर्रा तथा रिचर्ड 'कागा मारु' (Kaga Maru) नामक स्टीमर से भारत की ओर चले। जहाज़ में उनके साथ प्रोटेस्टेंट मत के दो सम्प्रदायों— एंग्लिकन और प्रेसबेट्रीयन— के ईसाई भी यात्रा कर रहे थे। रविवार के दिन दोनों में बहस छिड़ गई कि प्रार्थना का नेतृत्व कौन करेगा। मिर्रा ने इस प्रार्थना में भाग नहीं लिया। एक पादरी ने उनसे पूछा कि वह प्रार्थना में क्यों नहीं आयीं? इस पर मिर्रा ने कहा कि इस शुष्क कर्मकाण्ड में उनकी आस्था नहीं है। इस पर पादरी बोला 'क्या तुम भौतिकवादी हो?' मिर्रा ने उत्तर 'ना' में दिया। मिर्रा ने पादरी से ही पूछा कि वह कहाँ जा रहे हैं? इस पर पादरी ने बताया कि वह धर्म-परिवर्तन के कार्य हेतु चीन जा रहे हैं। इस पर मिर्रा ने तपाक से उत्तर दिया, "वह देश जिसने ईसाई-धर्म के जन्म से हज़ारों वर्ष पहले दर्शन और भगवान् से मिलने की पद्धति बताई, उसे आप शुष्क कर्मकाण्ड सिखाने जा रहे हैं? क्या आप अपने मत की सच्चाई मानते हैं?'[1] अब पादरी चुप हो गया।

दिनांक 29 मार्च, 1914 को सायंकाल मिर्रा की महर्षि अरविन्द से प्रथम भेंट हुई। प्रथम दृष्टि में ही मिर्रा ने श्रीअरविन्द को अपने अंतर्दर्शनवाले श्रीकृष्ण के रूप में पहचाना और यह जाना कि उसका स्थान भी इनके साथ भारत में है।[2] मिर्रा ने अपनी डायरी में 02 फरवरी, 1914 को प्रार्थना व ध्यान के अंतर्गत लिखा,[3] 'यदि हज़ारों लोग अज्ञान के अन्धकार में डूबे हों तो भी क्या? उनकी उपस्थिति ही यह सिद्ध दिखलाने में पर्याप्त है कि एक दिन ऐसा आएगा, जब अन्धकार प्रकाश में बदल जाएगा और प्रभो ! तेरा साम्राज्य इस धरती पर स्थापित होगा।'

मिर्रा व रिचर्ड लगभग एक वर्ष (फरवरी, 1915 तक) पाण्डिचेरी रहे। श्रीअरविन्द के 42वें जन्मदिवस 15 अगस्त, 1914 को 'आर्य' (*'Arya'*) नामक एक अंग्रेज़ी-मासिक पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ।[4] इस आध्यात्मिक पत्रिका का फ्रांसीसी-संस्करण भी दोनों के सहयोग से प्रारम्भ हुआ। इन्हीं दिनों फ्रांस की संसद् के लिए पाण्डिचेरी से भी एक प्रतिनिधि का चुनाव करने के लिए फ्रांस से कुछ

1. *श्रीमाँ,* विद्या भारती प्रकाशन (कुरुक्षेत्र, 2003), पृ 6-7
2. एमृ पीृ पण्डित, पूर्वोद्धृत, पृ 181; *राष्ट्रधर्म,* 03 मई, 2003, पृ 6
3. मिर्रा अल्फासा, *मदर्स एजेण्डा,* भाग 1 (पाण्डिचेरी), पृ 163-164
4. नोलिमा दास, पूर्वोद्धृत, भाग 1, पृ 254

अधिकारी आए थे। पॉल भी चुनाव लड़ना चाहते थे। परन्तु चुनाव में हार गए थे। अतः वह वापिस चले गये। 18 फरवरी, 1915 को मिर्रा भी फ्रांस लौट गयीं।

पॉल रिचर्ड को जापान में काम मिल गया। अतः दोनों पहले टोक्यो (1916-1917) तथा क्योटो (1917-1920) रहे। जापान में मिर्रा ने बौद्ध स्थानों की यात्रा की। जापानी-भाषा सीखी। जापान में उनका बौद्ध तथा शिन्तो मत (Shintoism) से साक्षात्कार हुआ। यहीं उन्हें 'वासुदेव सर्वमिति' का दर्शन हुआ जिसकी तुलना विद्वानों ने श्रीअरविन्द के अलीपुर जेल में श्रीकृष्ण-दर्शन से की है।[1] इसी काल में (जून, 1916) टोक्यो में ही उनकी भेंट महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर से हुई जो उस समय उसी होटल में ठहरे थे जिसमें मिर्रा थीं। महाकवि ने उन्हें शान्ति निकेतन आने का निमन्त्रण दिया, परन्तु मिर्रा ने स्वीकार न किया। यहीं पर उनकी भेंट प्रसिद्ध क्रान्तिकारी रास बिहारी बसु (1886-1945) से भी हुई।

दिनांक 20 दिसम्बर, 1916 को मिर्रा ने अपनी डायरी में लिखा कि वह ध्यानमग्न थीं तो शाक्यमुनि बुद्ध उनके सामने प्रकट हुए और उन्होंने यह सन्देश दिया, "मैं तुम्हारे हृदय में स्वर्णिम ज्योति से घिरा हीरा देखता हूँ जो शुद्ध और ऊष्ण— दोनों साथ-साथ है, जिससे यह अव्यक्त प्रेम को व्यक्त कर सके। पृथिवी और मनुष्य की ओर मुड़ो, यह आदेश क्या तू सर्वदा अपने हृदय में नहीं सुनती..... मैं स्पष्ट रूप से तेरी आँखों के सामने प्रकट हुआ हूँ, ताकि तू तनिक भी सन्देह न करे।"[2]

इसी दौरान मिर्रा का पुत्र आन्द्रे 18 वर्ष का हो गया था जो फ्रांसीसी सेना में भर्ती हो गया था। जापान में ही मिर्रा की भेंट डोरोथी हॉड्गसन (Dorothy Hodgson) नामक एक अंग्रेज़ महिला से हुई जो मिर्रा को फ्रांस से जानती थीं तथा मिर्रा भी उसे गुरु कहती थीं।[3]

दिनांक 24 अप्रैल, 1920 को, प्रथम महायुद्ध की समाप्ति के पश्चात् मिर्रा अपने पति के साथ स्थायी रूप से पाण्डिचेरी आ गयीं। ऐतिहासिक दृष्टि से

1. *श्रीमाँ,* विद्या भारती प्रकाशन, पूर्वोद्धृत, पृ 9
2. 'I see in thy heart a diamond surrounded by a golden light.... Learn to radiate and do not fear the storm.... Turn to earth and men... thy heart... carries a blessed message for those who are athirst for compassion. Henceforth nothing can attack the diamond.'
3. के आर् एस् आयंगर, *ऑन द मदर* (1952); *द क्रॉनिकल ऑफ़ ए मेनीफैस्टन एण्ड मिनिस्ट्र* (पाण्डिचेरी, 1978), पृ 182



पाण्डिचेरी पहले से ही ऋषि-मनीषियों की साधना-भूमि रहा है। एक विद्वान् ने इसका प्राचीन नाम 'वेदपुरी' बताया है। आधुनिक काल में इसका वर्तमान स्वरूप फ्रांसीसी गवर्नरद्वय फ्रेंकोइस मार्टिन (François Martin : 1699-1706) व डूप्ले (Joseph François Dupleix : 1742-1754) ने दिया था।[1] आज जहाँ श्रीअरविन्दाश्रम है, वहाँ पहले कभी ऋषि अगस्त्य की पाठशाला थी। आश्रम का वर्तमान परिसर कभी उस प्राचीन मन्दिर का एक भाग था जो डूप्ले के काल में सन् 1750 के निकट गिर्जाघर में परिवर्तित कर दिया गया था।[2]

पाण्डिचेरी में ही 1920-'26 तक का काल मिर्रा की कठिन साधना का काल था।[3] 1920-'22 में पाण्डिचेरी में रहते हुए मीरा की अनेक विशिष्ट व्यक्तियों से भेंट हुई।[4] इनमें डब्ल्यू डब्ल्यू पीयरसन (William Winstanley Pearson : 1881-1923) प्रमुख थे जो पहले उन्हें जापान मिले थे। एक अन्य प्रमुख व्यक्ति दुरैस्वामी आयंगर थे जो चेन्नई के सुप्रसिद्ध वक़ील थे। इन्होंने बाद में श्रीअरविन्दाश्रम के लिए महत्त्वपूर्ण कार्य किए थे। इसी भाँति उनकी मुलाकात सरला देवी चौधरानी (1872-1945) (महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर की बहिन की पुत्री तथा पंजाब (अमृतसर) के पूं रामभज दत्त चौधरी की पत्नी) व इंग्लैण्ड के संसद्-सदस्य कर्नल जोजेफ वेजवुड से हुई थी। बाद में मिर्रा का पुत्र आन्द्रे भी पाण्डिचरी रहकर उनकी सहायता करने लगा था।

मिर्रा ने आते ही महर्षि अरविन्द के आश्रम की पूरी व्यवस्था सम्भाल ली। अब वह समूचे आश्रम की माँ बन गयीं। 24 नवम्बर, 1926 को महर्षि अरविन्द ने उन्हें 'श्रीमाँ' नाम दिया। शीघ्र ही मिर्रा 'श्रीमाँ' के नाम से विख्यात हो गयीं। महर्षि अरविन्द ने मिर्रा को 'एक महान् शक्ति का अवतार' कहा। आश्रम की स्थापना कुल दस-बारह युवकों से हुई थी। कुछ ने यह संख्या 24 बतायी। श्रीमाँ के प्रयत्नों से आश्रम शीघ्र ही आध्यात्म का केन्द्र बन गया। इसके सदस्यों की संख्या बढकर 2,500 तक हो गयी। 1938 में अमेरिका के पूर्व राष्ट्रपति वूड्रो विल्सन (Woodrow

1. एस् सी मित्तल, *इण्डिया डिस्टॉर्ट्रेड : ए स्टडी ऑफ़ ब्रिटिश हिस्टॉरियन्स ऑन इण्डिया,* भाग 2, (दिल्ली, 1996), पृ 238-240; जी पी मैलीशन, *डूप्ले एण्ड द स्ट्रगल फॉर इण्डिया बाइ द यूरोपीयन नेशन्स* (ऑक्सफोर्ड, 1890), पृ 17, 37-8, 65
2. *श्रीमाँ,* विद्या भारती प्रकाशन, पूर्वोद्धृत, पृ 17
3. *राष्ट्रधर्म,* 03 मई, 2003, पृ 73
4. एम् पी पण्डित, पूर्वोद्धृत, पृ 235

Wilson : 1913-1921) की पुत्री मार्गरेट वूड्रो विल्सन (Margaret Woodrow Wilson : 1886-1946) स्थायी रूप से यहाँ आकर रहने लगी थीं। 1943 में यहाँ एक विद्यालय की स्थापना की गयी। 21 फरवरी, 1949 से यहाँ से *'बुलेटिन ऑफ़ फिज़िकल एजुकेशन'* (*'Bulletin of Physical Education'*) भी प्रारम्भ हुआ।

श्रीअरविन्दाश्रम, भारत तथा विश्व के अनेक आश्रमों से भिन्न था। अनेक आश्रमों में व्यक्ति के ठहरने, भोजन आदि की सुविधा रहती है। समय-समय पर प्रवचन होते हैं। परन्तु यह तो साधना आश्रम बना। वस्तुतः यह तो एक प्रयोगशाला थी, जहाँ मनुष्य भगवान् बनने के लिए और समग्र पृथिवी पर भगवान् की व्यवस्था लाने के लिए प्रयोग कर सकता।[1] इस प्रयास को साधना-पीठ के रूप में स्थापित किया गया। योग-साधना का स्थल बना यह आश्रम। साथ ही इसका उद्देश्य था कि भारत के सनातन आदर्शों के अनुरूप उस जीवन-पद्धति का दर्शन, जो मानव जीवन के आध्यात्मिक रूप को दिखा सके।[2] यह आश्रम मानो जगत् को पुनर्व्यवस्थित करने का प्रयास था।[3]

श्रीमाँ ने अपनी सेवा-तपस्या से इस आश्रम को एक साधना-भूमि, अध्यात्मभूमि तथा अपनी कर्मस्थली बनाया। 05 दिसम्बर, 1950 को श्रीअरविन्द का महाप्रयाण हुआ। आश्रम की सम्पूर्ण देख-रेख की व्यवस्था श्रीमाँ पर आ गयी। उन्होंने पूरी तन्मयता से सेवा की। एक लेखिका के अनुसार, 'श्रीमाँ आश्रम का हृदय थीं, जिनकी धड़कन उनके प्राणान्त के बाद भी आश्रम के विभिन्न प्रतिष्ठानों के कार्यकलापों में निरन्तर प्रतिध्वनित होकर उनके अमरत्व का बोध कराती रहती है।'

## राजनीति से दूर

श्रीमाँ प्रारम्भ से ही राजनीति से अलिप्त रहकर राष्ट्र-साधना में सजग थीं। कभी-कभी उनके वचनों, प्रश्नों के उत्तरों तथा समाधानों से उनका सहज रूप से चिन्तन प्रकट होता है।

द्वितीय महायुद्ध के बारे में उन्होंने यह घोषित किया था कि यह युद्ध साधारण नहीं है। इससे आध्यात्मिक मूल्यों और मानवता का भविष्य आधारित है।

1. मानवती आर्य्या, 'कर्म व अध्यात्म साधना की साकार मूर्ति श्रीमाँ', *दैनिक जागरण*, 22 मई, 2004
2. *श्रीमाँ,* विद्या भारती प्रकाशन, पूर्वोद्धृत, पृ 11
3. *वही,* पृ 11



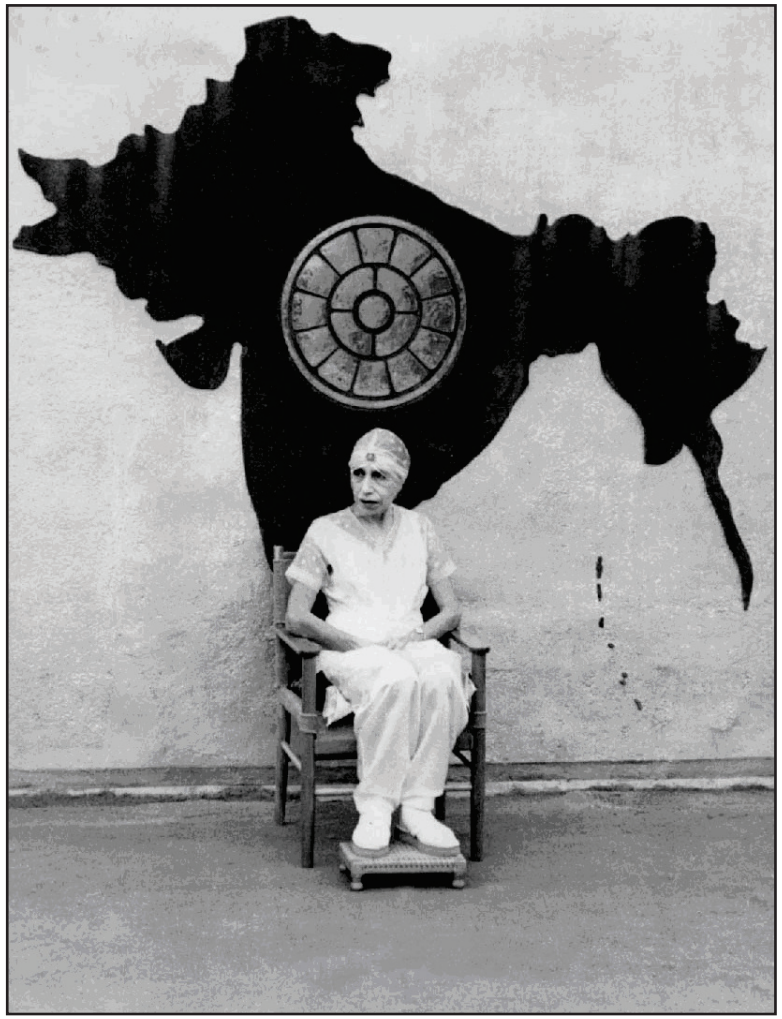

**पाण्डिचेरी में अखण्ड भारत के मानचित्र के समक्ष बैठीं श्रीमाँ**
**( 21 फरवरी, 1952 )**

यदि जर्मनी के हिटलर की जीत हो गई तो मानव-सभ्यता कम-से-कम एक हज़ार वर्ष पीछे चली जायेगी। उन्होंने सरकार को युद्ध-कोष में सहायता भेजते हुए श्रीअरविन्द के साथ तमिलनाडु के राज्यपाल को एक सम्मिलित पत्र में लिखा :

पाण्डिचेरी में अखण्ड भारत के मानचित्र के समक्ष श्रीमाँ, पं० नेहरू और लालबहादुर शास्त्री



'हम अनुभव करते हैं कि यह युद्ध न केवल न्यायसंगत-आत्मरक्षा तथा जर्मनी एवं नाज़ी जीवन-पद्धति और सारे संसार को हड़पने की नाज़ी हवस से आक्रांत देशों की रक्षा के लिए लड़ा जा रहा है; बल्कि सभ्यता और उससे अधिक आज तक प्राप्त उच्चतम सामाजिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक मूल्यों तथा मानव जाति के भविष्य की रक्षा के लिए भी है। चाहे कुछ क्यों न हो, इस लक्ष्य के लिए हमारी सहायता और सहानुभूति अटल रहेगी....।'[1]

श्रीमाँ के उपर्युक्त विचार श्रीअरविन्दाश्रम में ही कुछ सदस्यों को पसन्द न आये। उन्हें किसी भी सीमा तक ब्रिटिश विरोध पसन्द था। दूसरे शब्दों में वे हिटलर को पसन्द करते थे।

इस पर श्रीमाँ ने 06 मई, 1944 को कहा, "जो लोग अपने विचारों और इच्छाओं से नाज़ियों की विजय मना रहे हैं, वे अपनी इच्छा के कारण ही भगवान् के विरुद्ध असुर का साथ दे रहे हैं।"

अतः उन्होंने नाज़ियों की विजय होने से भारत की भावी स्वाधीनता को ख़तरा बताया तथा भारतीय आध्यात्मिक ज्ञान के विनाश की बात के साथ एशिया तथा यूरोपीय राष्ट्रों की स्वाधीनता के ख़तरे से अवगत कराया।

उल्लेखनीय है कि श्रीमाँ और श्रीअरविन्द ने भारत में स्टेफोर्ड क्रिप्स (Richard Stafford Cripps : 1889-1952) के प्रस्ताव (Cripps mission, March 1942) का समर्थन किया, जब देश के बड़े-बड़े नेता यहाँ तक की महात्मा गाँधी भी इसे अस्वीकार कर चुके थे। समर्थन के पीछे उनका स्पष्ट मत था कि यदि यह प्रस्ताव मान लिया जाता तो भारत का विभाजन नहीं हुआ होता।

दिनांक 03 जून, 1947 को जब काँग्रेस के पृं नेहरू, सरदार पटेल, आचार्य कृपलानी, श्री बलदेव सिंह तक मुस्लिम लीग के मुहम्मद अली ज़िन्ना, लियाकत अली तथा सर अब्दुर नसरत ने भारत-विभाजन का प्रस्ताव मान लिया।[2] श्रीमाँ ने भारतमाता के खण्डित करने की इस घोषणा पर कहा :

"भारत की स्वाधीनता को सुसंगठित करने में हमारे सामने जो कठिनाइयाँ

1. *श्रीमाँ,* विद्या भारती प्रकाशन, पृ 13
2. एस् सी मित्तल, *राष्ट्रीय चैतन्य के प्रकाश में भारत का स्वाधीनता संघर्ष* (नयी दिल्ली, 2012), पृ 296

दिखाई दे रही हैं, उनके समाधान करने के लिए एक प्रस्ताव रखा गया है— यह हमें दिखाने के लिए रखा गया है कि हमारे झगड़े कितने हास्यास्पद हैं और तुम जानते हो कि यह प्रस्ताव हमें क्यों स्वीकार करना होगा। हमें अपने सामने यह प्रमाणित करने के लिए स्वीकार करना होगा कि हमारे झगड़े कितने हास्यास्पद हैं।

"स्पष्ट है कि यह कोई समाधान नहीं है। यह एक प्रकार की परीक्षा है, एक अग्निपरीक्षा है जो यदि हम इस पूरी सच्चाई के साथ स्वीकार करें और अपने जीवन में उतारें, तो हम यह सिद्ध करके दिखा देंगे कि किसी देश के टुकड़े करके हम उसमें एकता नहीं स्थापित कर सकते, उसे महान् नहीं बना सकते। विभिन्न विरोधी स्वार्थों को एक-दूसरे के विरुद्ध खड़ा करके उसे हम समृद्ध नहीं बना सकते। एक मतवाद को दूसरे मतवाद के विरोध में उपस्थितकर हम सत्य की सेवा नहीं कर सकते। जो हो, भारत की एक ही आत्मा है और जब तक ऐसी अवस्था नहीं आ जाती कि हम अखण्ड भारत की बात कह सकें, तब तक हमें सर्वदा बस यही मंत्र जपना चाहिए— भारत की आत्मा चिरञ्जीवी हो।"[1]

दिनांक 15 अगस्त, 1947 को श्रीअरविन्द के 75वें जन्मदिवस पर देश स्वाधीन हुआ। जहाँ श्रीमाँ ने स्वाधीनता का स्वागत किया, वहाँ श्रीअरविन्द तथा श्रीमाँ ने प्रत्येक व्यक्ति को स्मरण दिलाया कि भारत अखण्ड है। भारत के टुकड़े नहीं किए जा सकते। उन्होंने आश्रम में खेल के मैदान में अखण्ड भारत का ही मानचित्र स्थापित किया। श्रीमाँ ध्यान और गण प्रचलन के समय उसको प्रणाम करती थीं। वह आने-जानेवाले प्रत्येक को मानचित्र के माध्यम से मानो यह व्यक्त करती थीं कि भारत का विभाजन झूठा है। उसे मिटाना चाहिए और वह मिटकर रहेगा।

उल्लेखनीय है कि सन् 1956 में भारत सरकार ने अखण्ड भारत के मानचित्र पर आपत्ति की और उसे बदलने को कहा। परन्तु श्रीमाँ ने यह स्वीकार न किया। यह आपत्ति बार-बार की जाती रही, परन्तु श्रीमाँ ने नहीं माना। अतः भारत में आज भी पाण्डिचेरी के अलावा कदाचित् ही कोई स्थान हो जहाँ उस अखण्ड भारत के मानचित्र को नित्य प्रणाम किया जाता हो।

दिनांक 31 अक्टूबर, 1954 को व्यावहारिक रूप से भारत के

1. *श्रीमाँ,* विद्याभारती प्रकाशन, पूर्वोद्धृत, पृ 1

स्थापत्यकला का बेजोड़ उदाहरण ओरोविल (पाण्डिचेरी) का 'मातृमन्दिर'

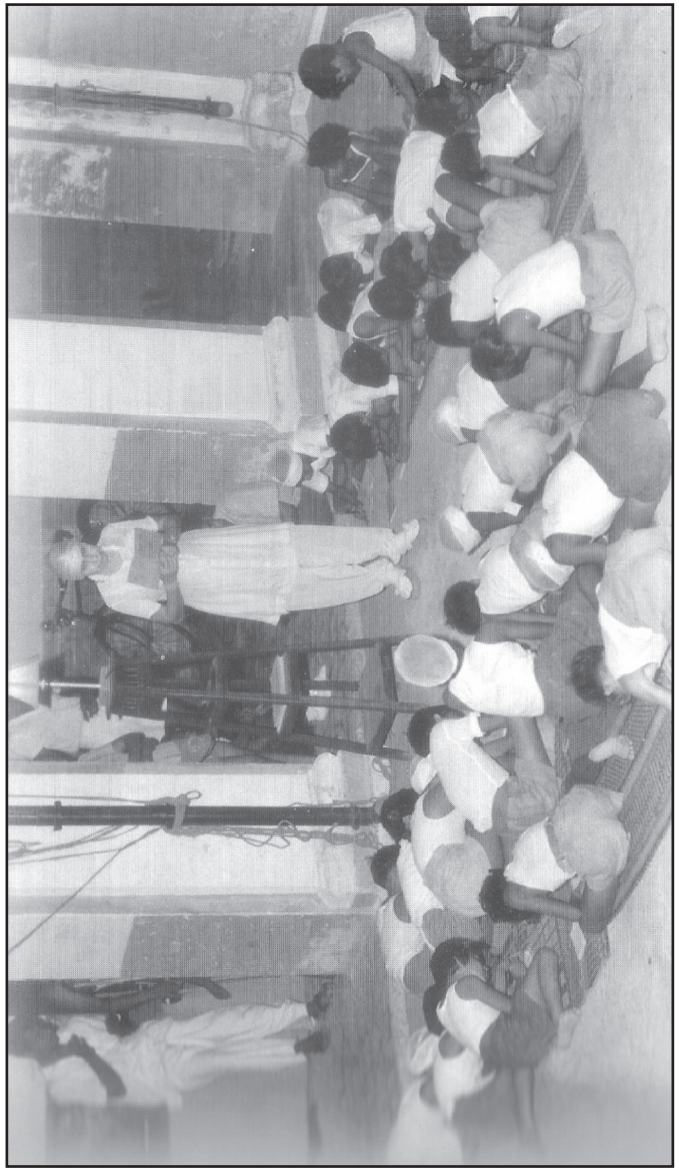

श्रीअरविन्दाश्रम में बच्चों को पढ़ाती हुई श्रीमाँ



फ्रांसीसी-क्षेत्रों को, भारत को सौंपा गया।[1] 15 अगस्त, 1955 को पाण्डिचेरी के भारत में विलय के साथ श्रीमाँ ने घोषणा की :

> "आज के दिन मैं अपनी चिरवाञ्छित इच्छा प्रकट करना चाहती हूँ कि मैं भारतीय नागरिक बनूँ। सन् 1914 में ही जब मैं पहली बार भारत आई, मैंने अनुभव किया कि भारत ही मेरा असली देश है, यही मेरी आत्मा है और अंतःकरण का देश है। मैंने निश्चय किया है कि ज्यों ही भारत स्वतन्त्र होगा, त्योंही मैं अपनी यह अभिलाषा पूरी करूँगी। लेकिन मुझे उसके बाद भी पाण्डिचेरी-आश्रम के प्रति अपने भारी उत्तरदायित्व के कारण बहुत प्रतीक्षा करनी पड़ी। अब समय आ गया है कि जब मैं अपने विषय में घोषणा कर रही हूँ।"

श्रीमाँ के अथक परिश्रम सेवा और त्याग से श्री अरविन्दाश्रम तथा श्रीमाँ द्वारा स्थापित शिक्षा-केन्द्र अनेक महापुरुषों के आकर्षण का केन्द्र बन गया। 06 जनवरी, 1952 को उन्होंने 'श्रीअरविन्द अंतर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय' (Sri Aurobindo International University Centre, renamed in 1959 Sri Aurobindo International Centre of Education) की स्थापना की और इसके उद्घाटन के लिए डॉ॰ श्यामाप्रसाद मुखर्जी (1901-1953) को आमन्त्रित किया गया था। डॉ॰ श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने काश्मीर-सत्याग्रह में जाते हुए श्रीमाँ से आशीर्वाद माँगा था। श्रीमाँ ने तार द्वारा काश्मीर न जाने की सलाह दी थी। सम्भवतः श्रीमाँ को उनके जीवन पर आनेवाले ख़तरे का पूर्वाभास हो गया था।

श्रीअरविन्द का शिक्षा-केन्द्र देखने प्रसिद्ध वेदवेत्ता पं॰ श्रीपाद दामोदर सातवळेकर (1867-1968) भी आए थे। वह वहाँ की शिक्षा-व्यवस्था तथा बाल-विकास के विभिन्न उपक्रम देखकर अत्यन्त प्रसन्नचित्त होकर बोले थे कि यह पूर्णतः वैदिक समाज का चित्र है। आदर्श वैदिक समाज में किसी का ध्यान इस बात पर नहीं टिकेगा कि कौन व्यक्ति पुरुष है या नारी, वहीं आत्मा-आत्मा का मिलन होगा और पुरुष-नारी की चेतना का भेद पीछे छूट जायेगा।

इसी भाँति दो अन्य श्रेष्ठ आध्यात्मिक शक्तियों को भी उनके आश्रम में

1. आंध्रप्रदेश में 'यनम' 13 जून, 1954 को स्वाधीन हो गया तथा शेष कारीगल, माही, चन्द्रनगर और पाण्डिचेरी पर दो वर्षों के पश्चात् पूर्ण नियन्त्रण हो गया। क़ानूनी रूप से हस्तांतरण 1962 में हुआ

आने का अवसर मिला। ये थे– प्रख्यात संत श्रीआनन्दमयी माँ (1896-1982) तथा राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के तत्कालीन सरसंघचालक श्री माधवराव सदाशिवराव गोळवलकर (श्री गुरुजी, 1906-1973)। वार्तालाप के पश्चात् श्रीमाँ ने प्रसन्न हो उन्हें गुलाब का फूल भेंट किया था।

सन् 1962 से श्रीमाँ बीमार रहने लगीं। इस समय उनकी आयु भी 84 वर्ष की हो गई थी। अब वह वर्ष में केवल एक बार दर्शन देतीं। परन्तु श्रीअरविन्द के एक प्रमुख शिष्य सतप्रेम (1923-2007) ने साप्ताहिक भेंट से उनसे हुई समस्त सामूहिक भेंटों तथा समस्त वार्ताओं का संकलन किया जो 1960-'73 तक का है। यह 13 भागों में *'मदर्स एजेण्डा'* (*Mother's Agenda*) के रूप में अंग्रेज़ी तथा फ्रेंच (*L'Agenda*') में प्रकाशित हुआ है। श्रीमाँ की जन्मशताब्दी (1978 ई ) के अवसर पर उनकी प्रमुख रचनाओं को *'कलेक्टेड वर्क्स ऑफ़ द मदर'* (*Collected Works of the Mother*) शीर्षक से 17 भागों में प्रकाशित किया गया है। इसके साथ ही उनके द्वारा *'मदर ऑन हरसेल्फ'* (*'Mother of herself'*) नामक ग्रन्थ भी प्रकाशित हुआ है।

श्रीमाँ ने महर्षि अरविन्द के विचारों को साकार स्वरूप देने के लिए 'ओरोविल' (उषानगरी, City of Dawn) की योजना रखी। इसका उद्देश्य इसके अंतर्गत आत्मा और शरीर, पुरुष और प्रकृति, स्वर्ग व धरती के बीच समरसता स्थापित करनेवाले सामूहिक जीवन को सम्भव बनाने का प्रयास करना था। 28 फरवरी, 1968 के इसकी नींव रखी गयी। पाण्डिचेरी से आधा किलोमीटर की दूरी पर इस अंतर्राष्ट्रीय नगर के उद्घाटन के लिए भारत या विश्व के किसी को न बुलाकर विश्वभर से आए उन्हीं किशोरों तथा युवकों से हुआ जिन्होंने एक कमल में अपने-अपने देश की मिट्टी को लगाकर उद्घाटन के पवित्र कार्यक्रम को पूरा किया। ओरोविल का संकल्प-पत्र सर्वप्रथम संस्कृत में उच्चारित हुआ।[1]

दिनांक 21 फरवरी, 1971 को ओरोविल नगर के मध्य में 'मातृ मन्दिर' की नींव रखी गयी और मई, 2008 में श्रीमाँ के 93वें जन्मदिवस पर यह अनोखा भवन बनकर तैयार हुआ। पश्चिमी अफ्रीका के एक विद्वान् लुई अलेन को यह विकास का कार्य दिया गया।

दिनांक 17 नवम्बर, 1973 को 95 वर्ष की आयु में विश्व की यह महान्

1. *श्रीमाँ,* विद्या भारती प्रकाशन, पूर्वोद्धृत, पृ 17



आत्मा परमात्मा में लीन हो गयी। श्रीमाँ के निम्नलिखित वाक्य स्मरणीय हैं जो वह बार-बार दोहराती थीं :

"भारत ही सारी दुनिया का आध्यात्मिक गुरु है। भारत को अपनी सच्ची ऊँचाई तक उठना चाहिये। समस्त संसार की समस्याएँ भारत में आकर इकट्ठी हो गई हैं, और उनका असली समाधान यहीं होगा।"

श्रीमाँ ने एक बार अपने मन को हृदय के उद्गार प्रकट करते हुए कहा था,

"जन्म और प्रारम्भिक शिक्षा से मैं फ्रेंच हूँ। अपनी इच्छा और रुचि से मैं भारतीय हूँ। मेरे जीवन का एकमात्र ध्येय है श्रीअरविन्द की महान् शिक्षाओं को मूर्तरूप देना। सन् 1914 से ही, जब मैं पहली बार भारत आयी, मैंने अनुभव किया कि भारत ही मेरा असली देश है, यह मेरी आत्मा और अंतःकरण की भूमि है। भारत की सच्ची नियति है जगत् का गुरु बनना।

"हे भारत ! आध्यात्मिक ज्ञान और प्रकाश को देख! जगत् में अपने सच्चे कर्तव्य के प्रति सचेतन होओ और एकता तथा सामञ्जस्य का मार्ग दिखलाओ।"

## श्रीमाँ और शिक्षा

पाण्डिचेरी में जहाँ श्रीअरविन्दाश्रम तथा ओरोविल– किसी भी यात्री के लिए दो पवित्र तीर्थस्थल हैं, वहाँ श्रीमाँ का शिक्षा-केन्द्र भी सभी के आकर्षण का केन्द्र है। श्रीमाँ ने आध्यात्मिक ज्ञान तथा मानव विकास के लिए इसे सर्वाधिक महत्त्व दिया। उन्होंने मानव-जीवन के विकास में संस्कारों को बड़ा महत्त्व दिया।

श्रीमाँ के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य होना चाहिए विकसित हुई आत्मा को अपने अन्दर से सबसे अच्छी चीज़ निकालने की तथा इसे उदात्त उपयोग के लिए पूर्ण बनाने में सहायता करना।[1] श्रीमाँ ने सर्वाधिक ध्यान बाल-शिक्षा की ओर दिया। उन्होंने आदर्श बालक की संकल्पना की। उनका कथन है कि आदर्श बालक को उस भविष्य में विश्वास होता है जो आगे आनेवाली सभी उपलब्धियों से, सौन्दर्य, ज्योति से समृद्ध है। बालपन भविष्य का तथा आगे जानेवाली सभी विजयों की महान् आशा

1. श्रीमाँ, *आदर्श माता-पिता, अध्यापक और बालक* (श्रीअरविन्द सोसायटी, कोलकाता), पृ 22; विस्तार के लिए देखें, *कलेक्टेड वर्क्स ऑफ़ श्री मदर*, भाग 12 (पाण्डिचेरी, 2002)

का प्रदीप है।

श्रीमाँ ने आदर्श बालक में अनेक गुणों का समुच्चय[1] बतलाया है। उनके अनुसार वह दृढ़ निश्चयी, उत्साही, धैर्यशील तथा शान्त स्वभाव का होता है। वह सदैव अध्यवसायी तथा हर परिस्थिति में प्रसन्न रहनेवाला होता है। वह सब प्रकार के अनुशासन का पालनकर्ता व ईमानदारी से कार्य करता है। वह कभी अकेला अनुभव नहीं करता बल्कि उसे लगता है कि परमात्मा सदैव उसके साथ है।

श्रीमाँ ने शिक्षा के क्षेत्र में माता-पिता व अध्यापक की भूमिका के बारे में अनेक बार अपने विचार रखे। उन्होंने मातृत्व को नारी की प्रधान भूमिका मानी है। उन्होंने मातृत्व के कर्तव्य के बारे में कहा कि वह वर्तमान परिस्थितियों को बदलने की क्षमता रखनेवाली आध्यात्मिक शक्तियों को अभिव्यक्त करे।[2] उन्होंने नारी का सच्चा क्षेत्र आध्यात्मिक बतलाया।[3]

श्रीमाँ ने कहा कि बालकों को शिक्षा दे सकें इसके लिए प्रथम तो माता-पिता को स्वयं ही शिक्षित होना होगा, स्वयं के विषय में सजग होना और अपने ऊपर प्रभुत्व रखना होगा।[4] उनके अनुसार बच्चे को धारण करना और प्रायः अवचेतन रूप से उसके शरीर का निर्माण करना पर्याप्त नहीं है। वह इसके लिए विचार तथा संकल्प की शक्ति से चरित्र-निर्माण की बात कहती हैं। श्रीमाँ माता-पिता का आह्वान करते हुए कहती हैं, "माता-पिताओ ! एक ऊँचा आदर्श अपने सामने रखो और हमेशा उसके अनुसार कार्य करो और तुम देखोगे कि धीरे-धीरे तुम्हारा बच्चा भी इस आदर्श को अपने अन्दर प्रतिबिम्बित कर रहा है।"[5] वह माता-पिता से कहती हैं कि सच बोलना हमेशा अच्छा होता है। वे बालक के योग्य विकास के लिए शारीरिक शिक्षा, अच्छी आदतें, सादा और स्वास्थ्यप्रद भोजन, स्वच्छता, पर्याप्त नींद की आदतें डालें। श्रीमाँ बच्चों को डाँट-फटकार तथा भय से मुक्त रखने के हक़ में हैं। उनका स्पष्ट मत है कि भय के द्वारा शिक्षा देना बड़ा ख़तरनाक तरीक़ा है। यह निश्चित रूप से छल-कपट और झूठ को जन्म देता है[6], साथ ही वह सबसे बुरी चीज़

1. *श्रीमाँ*, विद्या भारती प्रकाशन, पूर्वोद्धृत, पृ 18, 20
2. श्रीमाँ, *आदर्श माता-पिता, अध्यापक और बालक*, पृ 11, 12
3. *वही*, पृ 8-9
4. *वही*, पृ 14, 15
5. *वही*, पृ 15
6. *वही*, पृ 20



अपने बच्चों को नौकरों के हाथ छोड़ देना बतलाती हैं।[1]

श्रीमाँ ने शिक्षा के क्षेत्र में आदर्श अध्यापक पर भी विस्तृत चिन्तन किया है। उनका कहना है कि शिक्षा का नया उद्देश्य है बालक की बौद्धिक, सौन्दर्य-बोधात्मक, भावात्मक, आध्यात्मिक सत्ता और उसके सामुदायिक जीवन और आदर्शों को उसके अपने स्वभाव और क्षमताओं में से विकसित करना[2]— यह प्राचीन शिक्षा के उद्देश्य से भिन्न है जो केवल रूढ़िबद्ध ज्ञान तथा आचरण के नियम को आरोपित करता था।

श्रीमाँ ने सच्चे शिक्षण के लिए तीन सिद्धान्तों[3] को बतलाया है। इसमें पहला यह कि कुछ भी सिखाया नहीं जा सकता। शिक्षक कोई प्रशिक्षक या काम लेनेवाला वफ़ादार नहीं है। वह सहायक और पथ-प्रदर्शक है। उसका काम सुझाव देना है, थोपना नहीं। दूसरा सिद्धान्त मन के विकास में स्वयं उसकी सलाह लेना। इसी भाँति तीसरा सिद्धान्त है कि यदि बाहर से कोई चीज़ लानी है तो उस पर लादे नहीं, बल्कि सच्चे विकास के लिए स्वाभाविक और मुक्त वृद्धि। उन्होंने विकास के लिए शारीरिक, प्राणिक, मानसिक तथा बौद्धिक विकास को आधार बतलाया। बालकों में अध्ययन की रुचि तथा ज्ञानप्राप्ति के लिए अथक प्रयत्न करने की आदत डालने को वह महत्त्वपूर्ण मानती हैं। माता-पिता की भाँति वह भी अध्यापक को बच्चों को प्रेम और मृदुता के वातावरण में शिक्षा देने की बात करती हैं। उनका कथन है, "मार-पीट नहीं, कभी नहीं; डाँट-डपट नहीं, कभी नहीं।" संक्षेप में उनका मत है कि 'कोई पद्धति उतनी अच्छी तरह से तभी लागू की जा सकती जब तक उसे स्वयं अध्यापक ने ही न खोजा हो। अन्यथा वह अध्यापक के लिए भी उतना ही उबाऊ होती है, जितना विद्यार्थी के लिए।'[4]

श्रीमाँ ने किसी भी देश के बच्चों के लिए उत्तम शिक्षा का स्वरूप बतलाते हुए कहा कि बच्चों को यह बताया जाए कि उनके देश का सच्चा स्वरूप और निजी विशेषताएँ क्या हैं, जगत् में उनके राष्ट्र को कौन-सा कर्तव्य पूरा करना है और पार्थिक सामञ्जस्य में उसका सच्चा स्थान क्या है। उसमें दूसरे राष्ट्रों की भूमिका का

1. श्रीमाँ, *आदर्श माता-पिता, अध्यापक और बालक*, पृ 21
2. *वही*, पृ 22
3. *वही*, पृ 22-24
4. *वही*, पृ 48

विस्तृत ज्ञान भी जोड़ देना चाहिए, लेकिन नकल के भाव के बिना और अपने देश की प्रतिभा को आँखों से ओझल किए बिना। देशसेवा का सर्वोत्तम तरीका चेतना की अभिवृद्धि और उदारीकरण है।[1]

संक्षेप में श्रीमाँ अपने विस्तृत अनुभव, वार्तालापों, प्रश्न-उत्तर के रूप में संवादों तथा अनुभूति के आधार पर, देश को बदलते वातावरण तथा स्थितियों में शिक्षा द्वारा मानव-विकास का सम्पूर्ण बोध प्रस्तुत करती हैं जो सम्भवतः भारत का कोई भी बड़े-से-बड़ा शैक्षणिक मनोवैज्ञानिक या बुद्धिमान शिक्षक न दे सके।

## श्रीमाँ और अध्यात्म-ज्ञान

यह सर्वविदित है कि जो शक्ति श्रीमाँ को भारत खींच लाई, वह थी आध्यात्मिक शक्ति। महर्षि अरविन्द की भाँति उन्होंने भी उच्चतम चेतना का आभास किया था। स्वयं महर्षि अरविन्द ने श्रीमाँ के प्रति लिखा, 'माँ की चेतना और मेरी समान है।' और फिर कहा, 'मेरे और माँ के पथ में कोई अन्तर नहीं है, हमारा सर्वदा और अब भी एक ही मार्ग है जो सर्वोच्च मानसिक परिवर्तन और ईश्वरीय ज्ञान की ओर अग्रसर करता है।[2] ('The Mother's consciousness and the mine are the same : and again there is no difference between the Mother's path and mine; we have and have always had the same path, the path that leads to the supernatural change and the divine realization.') श्रीमाँ ने अपने जीवन का उद्देश्य श्रीअरविन्द के विचारों को मूर्तरूप देना बताया है।

यहाँ यह बताना ग़लत न होगा कि पीटर हीज़ (Peter Heehs) नामक एक अमेरिकी इतिहासकार ने अपनी पुस्तक *'द लीव्स ऑफ़ श्रीअरविन्द'* (*The Lives of Sri Aurobindo*, 2008) में तीन-चार पृष्ठों में श्रीअरविन्द तथा श्रीमाँ के आध्यात्मिक संबंधों[3] पर कुछ बेहूदा तथा अतार्किक विवादास्पद वर्णन किया है। सम्भवतः इसलिए कि उसकी पुस्तक आसानी से बिक सके। स्वाभाविक है कि इसका विश्वव्यापी विरोध हुआ। इससे पिण्ड छुड़ाने के लिए स्वयं लेखक को कहना पड़ा कि "मैंने दोनों के बीच किसी प्रेम-संबंध का वर्णन नहीं किया है।"[4]

1. श्रीमाँ, *आदर्श माता-पिता, अध्यापक और बालक*, पृ 24
2. श्रीमाँ, *रेज़ ऑफ़ लाइट : सेलेक्टेड सेइंग्स ऑफ़ मदर* (पाण्डिचेरी, 1997); देखें *स्केच ऑफ़ द मदर्स लाइफ*, पृ 178
3. देखें 'पीटर हिज़ द लीव्स ऑफ़ श्रीअरविन्द', *द टाइम्स ऑफ़ इण्डिया*, 15 अप्रैल, 2012
4. *द टाइम्स ऑफ़ इण्डिया*, 16 अप्रैल, 2012



## मानव के प्रभु के साथ संबंध

यहाँ पर केवल श्रीमाँ के समय-समय पर दिए गए वार्तालापों, पत्रों, डायरियों तथा सन्देशों के आधार पर अति संक्षेप में कुछ विचारों का अवलोकन किया गया है।

श्रीमाँ के अनुसार पृथिवी पर हमारे जीवन का उद्देश्य ईश्वर के प्रति सचेतन होना है। जीवन का वास्तविक उद्देश्य है अपने अन्दर, अंतःस्थल में ईश्वर की उपस्थिति पा सके तथा इसे समर्पित कर सके। यह इसलिए कि जीवन की समस्त भावनाओं तथा क्रियाकलापों का सञ्चालन हो। यह अस्तित्व का एक सच्चा तथा शानदार उद्देश्य है।

श्रीमाँ जीवन के उद्देश्य को ईश्वर को पाना तथा उसके प्रति समर्पित होने का मानती हैं। उनका कहना है कि अपनी समस्त कठिनाइयाँ प्रभु को दे दो, वह तुम्हें उन कठिनाइयों से मुक्त करायेगा। वे प्रभु की खोज को मानव-जीवन का उद्देश्य बतलाती हैं। वह प्रभु को सर्वव्यापक मानती हैं। उदाहरण के लिए उनका कथन है कि शारीरिक धरातल पर ईश्वर सौन्दर्य के द्वारा, मानसिक रूप से ज्ञान के द्वारा, विस्तृत रूप से शक्ति के द्वारा तथा मनोवैज्ञानिक रूप से प्रेम के द्वारा प्रकट होता है। विकसित होने पर इन चारों को एक ही चेतना में एकत्रित देखता है। वह प्रभु के प्रति समीपता, चेतना, स्वभाव की स्थिरता तथा प्रेम से बढ़ती है।[1] वह बार-बार बतलाती हैं कि ईश्वर सदैव हमारे साथ है।[2]

श्रीमाँ का कथन है कि सुख जीवन का उद्देश्य नहीं है। सामान्य जीवन का उद्देश्य है कर्तव्य का पालन। आध्यात्मिक जीवन का उद्देश्य है प्रभु की प्राप्ति। प्रभु में पूर्णता है जो हमें प्राप्त करनी चाहिये। उनका यह भी कथन है कि हम अपने समस्त विचारों, समस्त भावनाओं, समस्त क्रियाकलापों और समस्त आशाओं को प्रभु की तरफ़ आवृत्त कर दें तथा उस पर केन्द्रित करें। वह है हमारा अकेला सहायक तथा रक्षक। हमारे समस्त विचार, सभी भावनाएँ प्रभु की तरफ़ ऐसे बहें जैसे नदियाँ समुद्र की ओर जाती हैं।

## योग का मार्ग

श्रीमाँ साधक और साधना को प्रभु से संयोग को 'योग' बतलाती हैं।[3] श्रीमाँ का

1. श्रीमाँ, *रेज़ ऑफ़ लाइट*, पृ 9
2. *वही*, पृ 10-13
3. *वही*, पृ 15

विचार है कि जीवन में निरन्तर सत्य और झूठ, प्रकाश और अन्धकार, प्रगति और अधोगति, चढ़ाइयों की ऊँचाई और पाताल में गिरने का चुनाव रहता है।[1] परन्तु यह प्रत्येक पर निर्भर कि उसने क्या चुना है। प्रत्येक मानव के जीवन में कुछ क्षण आ जाते हैं जब उसे मार्ग और गड़बड़ रास्ते में से एक चुनना होता है। वह अपना एक पाँव एक ओर दूसरा पाँव दूसरी ओर नहीं रख सकता। यदि वह ऐसा करेगा तो टुकड़ों में बँट जायेगा।

श्रीमाँ का कहना है कि प्रत्येक मानव में एक आध्यात्मिक भवितव्य होता है जिसकी निकटता या दूरी उसके निश्चय पर निर्भर है। उसे सदैव पूरी ईमानदारी से अपनी इच्छा करनी चाहिए।[2]

श्रीमाँ के अनुसार जगत् में एक प्रगतिशील परिवर्तन की प्रक्रिया है। यदि कोई व्यक्ति योग का मार्ग अपनाए तो तीव्रता से उस प्रक्रिया में अपने को लगाना चाहिये।

श्रीमाँ ने विश्व में तीन प्रकार के विचारों का वर्णन[3] किया है। प्रथम बौद्ध या शांकर-मत है जो विश्व को एक माया मानते हैं, जहाँ अज्ञान तथा दुःख है। तथा इससे शीघ्रातिशीघ्र इसकी समाप्ति चाहते हैं। दूसरे वेदान्तिक हैं जो विश्व को ईश्वरीय मानते हैं तथा सर्वव्यापक मानते हैं; वे इसके बाह्य स्वरूप को विकृत मानते हैं तथा अन्दर के प्रभु चेतना को विकसित करना चाहते हैं और बाह्य जगत् की चिन्ता किए बिना उसी में रहना चाहते हैं। श्रीमाँ तीसरी श्रेणी में श्रीअरविन्द के विचारों को रखती हैं जिसके अनुसार विश्व प्रभु-चेतना तथा इच्छा का प्रकटीकरण नहीं है बल्कि यह ईश्वरीय के पूर्ण प्रकटीकरण के अंतर्गत विभिन्न ढंगों तथा प्रकार से— प्रकाश, ज्ञान, शक्ति, प्रेम तथा सौन्दर्य के रूप में विकसित की गई है।

सामान्यतः साधना का उद्देश्य सर्वोच्च चेतना या सत् चित् आनन्द से मिलन का उद्देश्य होता है। तथा यह मुक्ति जिन्हें मिल जाती है, वे विश्व को दुःखी अवस्था में छोड़ जाते हैं। जबकि श्रीअरविन्द की साधना दूसरों के उद्देश्यों से प्रारम्भ होती है। साधक को सर्वोच्च से मिलन के पश्चात् व्यष्टि कसे दूसरे की चिन्ता करनी चाहिए तथा समस्त परिवर्तन के कार्य में लगना चाहिए। समस्त योग (Internal

1. श्रीमाँ, *रेज़ ऑफ़ लाइट*, पृ 14
2. *वही*, पृ 15
3. *वही*, पृ 15-16



Yoga) विश्व से साधना और ध्यान के लिए संसार से मुक्त नहीं होता। प्रत्येक व्यक्ति को कम-से-कम एक तिहाई समय उपयोगी कार्य में लगाना चाहिये।[1]

श्रीमाँ का कहना है कि आश्रम में समस्त गतिविधियों का प्रावधान है तथा प्रत्येक को अपने स्वभाव के अनुसार उसे चुनना चाहिये। पर यह सब सेवा और निःस्वार्थ भाव से, परन्तु सदैव समस्त परिवर्तन के उद्देश्य से किया जाना चाहिये।[2]

इस दृष्टि से श्रीमाँ विकास के लिए आश्रम में चार बातों का निषेध बतलाती हैं, ये हैं— राजनीति, धूम्रपान, नशीले पदार्थों का प्रयोग तथा कामेच्छा।

श्रीमाँ योग के आधार पर विस्तृत विवेचन करती हैं। उसके अनेक आधार बतलाए हैं[3], जैसे— सच्चाई, ईमानदारी, चरित्र की उदारता, अहंकार का निषेध, ईश्वरीय कार्य के लिए निःस्वार्थ आत्मदान, ईश्वर से आस्था, ईश्वरीय प्रेम, शान्तता, पवित्रता, सतत प्रयास, स्वतन्त्रता, सत्यता, भाषा पर संयम आदि। उनका एक प्रसिद्ध वाक्य है— 'To know is good, to live is better and be, that is perfect.'[4]

## श्रीमाँ और भारत-भक्ति

स्वामी विवेकानन्द की भाँति श्रीमाँ ने भी प्राच्य और पाश्चात्य जगत् के वैचारिक चिन्तन का अन्तर बतलाते हुए कहा कि भारत के पास आत्मज्ञान है, बल्कि था। लेकिन उसने जड़ भौतिक पदार्थ की उपेक्षा की और उसके कारण कष्ट भोगा। जबकि पश्चिम के पास जड़-भौतिक पदार्थ का ज्ञान है, लेकिन उसने आत्मा को अस्वीकार किया और उसी कारण बुरी तरह कष्ट पा रहा है।[5]

श्रीमाँ का मानना है कि आध्यात्मिक दृष्टि से भारत विश्व में सबसे आगे है तथा उसे आध्यात्मिकता का उदाहरण स्थापित करना है।

श्रीमाँ का कहना है कि भारत वह देश है जहाँ आध्यात्मिकता का राज्य हो सकता है और होना चाहिये। और यहाँ उसका समय आ गया है। और फिर उस देश

1. श्रीमाँ, *रेज़ ऑफ़ लाइट*, पृ 17
2. *वही*, पृ 17
3. *वही*, पृ 25-85
4. *वही*, पृ 85
5. *डॉ हरवंशलाल ओबराय समग्र*, खण्ड 4 (वेदांत दर्शन की वैज्ञानिकता), (संपादक : स्वामी संवित् सुबोध गिरि, बीकानेर, 2012), पृ 670

की मुक्ति का यह एकमात्र साधन है, जिसकी चेतना दुर्भाग्यवश विदेशी राज्य और प्रभाव के कारण मिथ्या हो गई है लेकिन फिर भी उसके पास एक अद्‌भुत आध्यात्मिक परम्परा है।[1]

श्रीमाँ ने पुनः कहा कि भारत इस ज़मीन, यहाँ की नदियों और यहाँ के पहाड़ों का नाम नहीं है। इस देश के वासियों का सामूहिक नाम भी भारत नहीं है। भारत एक जीवित सत्ता है। यह सत्ता उतनी ही जीवित-जाग्रत् है जितने शिव आदि देवता।[2]

श्रीमाँ ने कहा, "भारत की आत्मा एक है, आध्यात्मिक सत्य के प्रति तीव्र सृजन की तात्त्विक एकता और जीवन के दिव्य स्रोत के प्रति उसकी अभीप्सा तीव्र है। इस आभीप्सा के साथ एक होकर समस्त देश एक ऐसी एकता को फिर से स्थापित कर सकता है जिसका अस्तित्व उच्चतर मन के लिए कभी लुप्त नहीं हुआ।[3]

## विश्वगुरु भारत

"भारत की सच्ची नियति विश्वगुरु बनना है। समस्त सृष्टि में पृथिवी का एक विशेष स्थान है, क्योंकि दूसरे ग्रहों से भिन्न यह विकासशील है और अपने केन्द्र में एक चैतन्य पुरुष को लिए हुए है। उसमें भारत विशेष रूप से भगवान् का चुना हुआ देश है। भारत को अपने भगवन्निर्दिष्ट कार्य की ऊँचाई तक ऊपर उठना चाहिए और विश्व के सामने सत्य की घोषणा करनी चाहिये।

"एकमात्र भारत ही विश्व में सत्य को ला सकता है तथा भगवत्संकल्प और शक्ति को अभिव्यक्त करके विश्व के सामने सन्देश प्रचारित कर सकता है। पर यह कार्य पश्चिम के जड़वाद का अनुकरण करने से नहीं होगा। भगवदिच्छा का अनुसरण करने पर भारत आध्यात्मिक पर्वत के शिखर पर जगमगा उठेगा, सत्य का मार्ग दिखाएगा और विश्व-ऐक्य का संगठन करेगा।"[4]

1. *श्रीमाँ,* विद्याभारती प्रकाशन, पूर्वोद्धृत, पृ 20
2. *वही,* पृ 21
3. *वही,* पृ 21
4. *वही,* पृ 22



# उपसंहार

राष्ट्र के उत्थान तथा आध्यात्मिक, सांस्कृतिक तथा धार्मिक जीवन के विकास में भारत की नारियों की अतुलनीय देन रही है। वेद-संहिताओं से वर्तमान तक भारतीय महिलाओं का श्रेष्ठ योगदान यहाँ के लौकिक तथा परलौकिक चिन्तन में सदैव होता रहा है। अनेक श्रेष्ठ विदुषी महिलाएँ मंत्रों की द्रष्टा, समाज-निर्मात्री तथा वीर योद्धा हुई हैं। उन्हें दिव्य गुणों से युक्त माना गया है। वेदादि तथा संस्कृत-ग्रन्थों में उनकी अमर कथाएँ हैं। कालान्तर में भारत में अत्याचारी क्रूर मुस्लिम-आक्रान्ताओं के काल में उनके यश एवं प्रतिष्ठा को गहरा धक्का लगा। पाश्चात्य अंधानुकरण तथा भौतिकता की चकाचौंध ने उनके सम्मान को कम किया तथा उनकी दशा हीन होती गयी। वर्तमान युग में विभिन्न सामाजिक-धार्मिक आन्दोलनों द्वारा समाज में नारी-जागरण तथा नारी-शिक्षा की ओर ध्यान आकृष्ट किया गया। राजा राममोहन राय (1772-1833), ईश्वरचन्द्र विद्यासागर (1820-1891), बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय (1838-1894) तथा ज्योतिबा फुले (1867-1890) आदि ने इसकी ओर विशेष बल दिया।

स्वामी विवेकानन्द तथा महर्षि अरविन्द-जैसे राष्ट्रपुरुषों ने न केवल भारत का आध्यात्मिक तथा सांस्कृतिक अभ्युत्थान किया, बल्कि विदुषी महिलाओं को हिंदुत्व की प्रखर भावना तथा मानसिकता से भारतभूमि पर आकर कार्य करने के लिए प्रेरित किया। अतः भारत के चिर पुरातन हिंदू-धर्म तथा संस्कृति से तन्मय हो कई विदेशी सुसंस्कृत महिलाओं ने भारत को अपनी कर्मभूमि बनाया।

बीसवीं शताब्दी के आध्यात्मिक तथा राष्ट्रीय जागरण में तीन विशिष्ट विदेशी महिलाओं का यथेष्ट योगदान रहा है। भारत के आध्यात्मिक जगत् में **मार्गरेट एलिज़ाबेथ नोबल** (1867-1911) पहली ब्रह्मवादिनी हैं जिन्होंने नियमपूर्वक हिंदू-धर्म, दर्शन तथा जीवन-प्रणाली को अपनाया। उन्हें ग़रीबों की सेवा, धार्मिक भावना, देशभक्ति तथा अदम्य उत्साह पारिवारिक संस्कारों से मिला था। वह शिक्षा और शिक्षिका— दोनों दृष्टियों से अति निपुण, प्रभावशाली तथा कुशाग्र बुद्धि से युक्त थीं। उन्होंने प्रारम्भ में ईसाई तथा बौद्ध-धर्म का गम्भीर अध्ययन किया, पर मन की शान्ति न हुई। अक्टूबर, 1895 में इंग्लैण्ड में उन्होंने प्रथम बार स्वामी विवेकानन्द का भाषण सुना तथा अगले मास स्वामी जी से उनकी प्रत्यक्ष भेंट हुई। तभी से उन्हें लगा कि जीवन का मार्ग मिल गया है। स्वामी जी के अगले वर्ष दूसरी बार इंग्लैण्ड में आगमन पर आयरलैण्ड की इस महान् बेटी ने भारत जाकर वहाँ के लोगों की सेवा करना अपना लक्ष्य बना लिया। स्वामी विवेकानन्द से लम्बे पत्र-व्यवहार के पश्चात् ही मार्गरेट को भारत आने की अनुमति मिली। श्रद्धाभाव से मार्गरेट ने स्वामी जी को लिखा, 'आपके देशवासी मेरे देशवासी होंगे।'

भारत पहुँचते ही वह वहाँ के जनजीवन से समरस हो गयीं। भारतीय वेशभूषा, खानपान अपनाया। भारतीय साहित्य, दर्शन तथा इतिहास पढ़ा। भारतीय सांस्कृतिक तीर्थस्थलों तथा उनके अवशेषों का प्रत्यक्ष दर्शन किया। माँ शारदामणि ने उन्हें दीक्षा दी तथा नाम दिया 'निवेदिता'। तभी से वह भारतीय जनमानस में भगिनी (सिस्टर) निवेदिता के नाम से जानी जाने लगीं। अनेक कठिनाइयाँ होने पर भी कलकत्ता में कन्या-विद्यालय खोला जो आज वहाँ के श्रेष्ठतम महाविद्यालयों में से है। अमेरिका तथा इंग्लैण्ड में स्थान-स्थान पर भारत के विरुद्ध चल रहे ईसाई-मिशनरियों के कुप्रचार का अपने प्रभावशाली भाषणों तथा कृत्यों से खण्डन किया। भारत के गौरवमय अतीत की झाकी प्रस्तुत की। यहीं इन्होंने अपनी पहली पुस्तक *'काली : द मदर'* लिखी जिसमें उन्होंने काली माँ के विविध रूपों का वर्णन करते हुए उसे भारत माँ का सही स्वरूप बतलाया।

सन् 1902 में स्वामी विवेकानन्द के प्रयाण के बाद उनके अधूरे कार्यों को पूरा करना अपने भावी जीवन का लक्ष्य बनाया। व्यावहारिक वेदान्त की मशाल ले उन्होंने भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन में बढ़-चढ़कर भाग लिया।

उन्होंने तत्कालीन क्रूर तथा अहंकारी ब्रिटिश वायसराय लॉर्ड कर्ज़न के



ज़बरदस्ती थोपे अत्याचारी तथा अलगाववादी क़ानूनों की कड़ी आलोचना की। बंग-भंग की घोषणा होने पर वह ब्रिटिश सरकार का तीव्र विरोध करनेवाली ब्रिटिश साम्राज्य की प्रथम विदेशी महिला थीं। उनका घर क्रान्तिकारियों का केन्द्र था। क्रान्तिकारी कार्यों के लिए वह बड़ौदा (बड़ोदरा) से श्रीअरविन्द को ले आई थीं। अलीपुर बम काण्ड (1908-'09) के पश्चात महर्षि को सकुशल पाण्डिचेरी भगाने में उनकी मुख्य भूमिका थी। एक विदेशी लेखिका ने भगिनी निवेदिता को 'देशद्रोही' भी कहा है। भगिनी निवेदिता का संबंध तत्कालीन सभी प्रमुख नेताओं— लोकमान्य तिलक, विपिनचन्द्र पाल, महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर तथा प्रसिद्ध वैज्ञानिक जगदीश चन्द्र बसु से था। वह प्रायः सभी क्रान्तिकारियों की मार्गदर्शिका थीं। उनका सम्पर्क प्रसिद्ध पत्रकारों, दार्शनिकों, कवियों, अर्थशास्त्रियों तथा कलाकारों से था।

भगिनी निवेदिता ने अपने ग्रन्थों में श्रेष्ठतम हिंदू-धर्म की विश्व में प्रचलित अन्य धर्मों से तुलनात्मक विवेचन तथा भारतीय इतिहास में अंग्रेज़ों द्वारा फैलाई अनेक विकृतियों तथा भ्रान्तियों का निवारण किया था। निवेदिता भारत के उन प्रारम्भिक इतिहासकारों में से थीं जिन्होंने अंग्रेज़ों के लिखे भ्रमिक इतिहास का प्रतिरोधकर 'भारत का इतिहास भारतीयों द्वारा, तथ्यों पर आधारित, सही इतिहास' लिखने की प्रेरणा दी।

दूसरी प्रसिद्ध महिला **श्रीमती एनी बेसेन्ट** (1847-1933) हैं। वह भारत में थियोसोफिकल सोसायटी की जीवन के अन्त तक एक महान् प्रवक्ता ही नहीं, अपितु भारत में हिंदू-धर्म की प्रचारिका, महान् शिक्षाविद् तथा भारत के स्वाधीनता संघर्ष में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने के लिए प्रसिद्ध हैं। लन्दन में जन्मीं, बचपन से ही ज्ञानपिपासु तथा धार्मिक वृत्ति की थीं। वह बचपन से ही रहस्यवादी तथा कल्पनावादी थीं। उनके पिता अंग्रेज़ तथा माता आयरिश थीं। बीस वर्ष की आयु में इनका विवाह एक जर्मन पादरी फ्रैंक बेसेन्ट से हुआ था, परन्तु स्वतन्त्र प्रवृत्ति की होने के कारण दोनों का दाम्पत्य जीवन सुखी न रहा तथा छः वर्षों के बाद संबंध-विच्छेद हो गया था।

शिक्षा तथा धर्म में अत्यधिक रुचि होने के कारण उन्होंने सभी धर्मों की प्रसिद्ध पुस्तकों का अध्ययन किया। भारत आने से पूर्व उन्होंने कई समाजसेवी संस्थाओं तथा शिक्षा-क्षेत्र में कार्य किया था। उनका सम्पर्क इंग्लैण्ड के विख्यात व्यक्तियों — थॉमस स्कॉट, चार्ल्स ब्रेडलाफ, विलियम टी स्टीड तथा थियोसोफिकल

सोसायटी की प्रसिद्ध जन्मदात्री हेलेना पेट्रोवना ब्लावत्सकी से था।

श्रीमती एनी बेसेन्ट ने भगिनी निवेदिता की भाँति, भारतभूमि को अपना देश माना। भारतीय जीवनशैली अपनायी। भारतीय साहित्य का गम्भीर अध्ययन तथा यहाँ के प्रसिद्ध तीर्थस्थानों की यात्रा की। उन्होंने भारत को अपने पूर्वजन्म की भूमि बतलाया। भारत आते ही आध्यात्मिकता का प्रचार तथा भारतीयों में भ्रातृत्व का भाव जगाना प्रारम्भ किया। उन्होंने हिंदू-धर्म की श्रेष्ठता को स्वीकार किया। उन्होंने हिंदू-भारत को सबल बनाने के लिए हिंदुत्व की रक्षा करना आवश्यक बतलाया। उन्होंने खण्डित नहीं अपितु अखण्ड हिंदुत्व का वीरतापूर्ण अध्ययन किया तथा इसका उत्साह तथा साहसपूर्वक पूर्ण समर्थन किया। श्रीमती एनी बेसेन्ट की एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण देन थियोसोफिस्टों का ध्यान बौद्ध-धर्म से हटाकर हिंदू-धर्म की ओर प्रवृत्त करने का था।

शिक्षा के क्षेत्र में भारत सदैव श्रीमती एनी बेसेन्ट का ऋणी रहेगा। शिक्षा-जगत् में वह एक आदर्शवादी, यथार्थवादी तथा राष्ट्रवादी थीं। उन्होंने भारत की प्राचीन गुरुकुल-पद्धति को अपनाते हुए उसे आधुनिक विज्ञान तथा तकनीकी से जोड़ा। साथ ही तत्कालीन पाश्चात्य शिक्षा-प्रणाली पर आधारित शिक्षा-प्रशिक्षण की कटु आलोचना की तथा इसे केवल बौद्धिक शिक्षा बतलाया, जिसमें बालक की सर्वांगीण उन्नति सम्भव नहीं है। श्रीमती एनी बेसेन्ट ने बच्चों की शिक्षा से लेकर विश्वविद्यालयीन शिक्षा-व्यवस्था के लिए व्यावहारिक तथा यथार्थपूर्ण योजना रखी। उन्होंने बच्चों को शिक्षा अपनी मातृभाषा में ही देना स्वीकार किया। उन्होंने तत्कालीन भारतीय शिक्षा को असन्तुलित, केवल क़िताबी, स्वदेश-संस्कृतिविहीन तथा अराष्ट्रीय बतलाया। उन्होंने भारतीय शिक्षा में इतिहास तथा संस्कृत-भाषा के अध्ययन पर ज़ोर दिया। श्रीमती एनी बेसेन्ट का पूरा विश्वास था कि भारत के शिक्षित लोगों की एक पीढ़ी भारत का नक्शा बदल देगी।

श्रीमती एनी बेसेन्ट ने 1905 के बंग-भंग से भारतीय राजनीति में रुचि लेनी प्रारम्भ कर दी थी। परन्तु 1912 से उन्होंने भारत की राजनीतिक गतिविधियों में सक्रिय रूप से भाग लिया। प्रथम महायुद्ध के दौरान जब भारत के अधिकतर नेता अंग्रेज़-भक्ति के प्रदर्शन में परस्पर होड़ कर रहे थे, एनी बेसेन्ट ने भारत के महानतम राष्ट्रनेता लोकमान्य तिलक के साथ मिलकर समूचे देश में गृहशासन-आन्दोलन (होमरूल) चलाकर सुप्त भारतवासियों को जगाया। ऐसी विकट स्थिति में उन्होंने देश के नवयुवकों में आत्मविश्वास तथा आत्मगौरव की भावना जगायी। उन्होंने



स्थान-स्थान पर जाकर ज़िलों में होमरूल कमेटियों की स्थापना की। वस्तुतः ये ज़िला-कमेटियाँ ही बाद में महात्मा गाँधी के असहयोग आन्दोलन की आधारभूमि बनीं। परन्तु उल्लेखनीय है कि असहयोग आन्दोलन के कार्यक्रमों से सहमत न होने पर वह काँग्रेस से अलग हो गई थीं।

भारत की तीसरी प्रसिद्ध विदेशी महिला **श्रीमती मिर्रा अल्फासा रिचर्ड** (1878-1973) हैं। वह भारत के आध्यात्मिक जगत् में 'श्रीमाँ' के नाम से विख्यात हैं। यहूदी माता-पिता की यह दिव्य पुत्री फ्रांस में जन्मी। उन्हें छोटी आयु में ही दिव्य अनुभूतियाँ होने लगी तथा असाधारण स्वप्न, अंतर्दर्शन तथा आध्यात्मिक अनुभव होने लगे थे। उन्होंने उत्तरी अफ्रीका जाकर गुह्य ज्ञान भी प्राप्तकर, इसमें दक्षता प्राप्त कर ली थी। छात्रा के रूप में वह चित्रकला तथा संगीत में निपुण थीं। भारत के संबंध में अनेक ग्रन्थों का अध्ययन किया था। उन्हें लगा कि शीघ्र ही इनकी 'श्रीकृष्ण'-जैसे श्यामवर्ण व्यक्ति से भेंट होगी।

मिर्रा अल्फासा 1920 में स्थायी रूप से पाण्डिचेरी पहुँच गई थीं तथा तभी से कठिन साधना में लग गई थीं। 1926 में साधना पूर्ण होने पर महर्षि अरविन्द ने ही उन्हें 'श्रीमाँ' कहा था तथा मृत्युपर्यंत वह इसी नाम से जानी गयीं।

श्रीमाँ ने श्रीअरविन्दाश्रम को सुदृढ़ आधार प्रदान किया तथा शीघ्र ही यह कुछ गिने-चुने व्यक्तियों के स्थान पर अनेक पुरुषों की आध्यात्मिक प्रेरणा-स्थली बन गया। 1952 में यहीं उन्होंने एक विद्यालय की स्थापना की जिसे देखने के लिए देश-विदेश के अनेक महत्त्वपूर्ण व्यक्ति आये। भारत-विभाजन के पश्चात् उन्होंने विद्यालय के क्रीड़ा-मैदान में अखण्ड भारत का एक विशाल मानचित्र बनावाया। पं नेहरू की सरकार ने इसकी स्थापना पर अनेक अड़चने डालीं, परन्तु श्रीमाँ इसे हटाने के लिए तैयार नहीं हुईं तथा उन्होंने तत्कालीन सरकार से संघर्ष भी किया।

श्रीमाँ की विश्व को एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण देन है— पाण्डिचेरी में विश्व के सभी व्यक्तियों के समष्टि जीवन को साकार रूप देने के लिए 'ओरोविल' नगर की स्थापना। यह नगर आज विश्व के लोगों का एक अंतर्राष्ट्रीय केन्द्र बन गया है।

श्रीमाँ की शिक्षा-पद्धति, आध्यात्मिक ज्ञान तथा भारतभक्ति का परिचय उनके अनेक उद्बोधनों, प्रवचनों, वार्तालापों, संवादों तथा रचनाओं द्वारा भारत को आध्यात्मिकता की ओर बढ़ने की सतत प्रेरणा देता है।

सुश्री भगिनी निवेदिता, डॉ॰ एनी बेसेन्ट तथा श्रीमाँ— तीनों के महती

योगदान को लें, तो निःसन्देह, बिना किसी अपवाद के, किसी को भी लगेगा कि उन्होंने समूचे राष्ट्र में नवीन चेतना, असीम आध्यात्मिक ज्ञान तथा देशभक्ति और राष्ट्रप्रेम को जाग्रत् किया। तीनों ने विश्व के सभी धर्मों का तुलनात्मक विवेचनाकर हिंदू-धर्म को श्रेष्ठतम तथा महानतम बतलाया। तीनों ने शिक्षा, अध्यात्म तथा भारतभक्ति के अपने गम्भीर चिन्तन से देश की युवाशक्ति का मार्गदर्शन किया। भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन में तीनों विदुषियों का विशिष्ट तथा प्रेरणास्पद योगदान रहा है। उन्होंने इस अविरल धारा को बनाए रखने में योगदान ही नहीं किया, अपितु भारत को नेतृत्व भी प्रदान किया। 1900-'11 तक सुश्री भगिनी निवेदिता, 1912-'20 तक श्रीमती एनी बेसेन्ट तथा 1920 से आगे श्रीमाँ ने राष्ट्रीय आन्दोलन में अपने विचारों अथवा कृत्यों से महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। तीनों ने ही भारत को पुनः आध्यात्मिकता की ओर मोड़कर भौतिकवाद के अंधानुकरण से रोकने का गम्भीर प्रयास किया। तीनों ने ही भारतवासियों में आध्यात्मिकता, भारतीयता तथा राष्ट्रीयता की प्रखर ज्योति जलायी। निःसन्देह तीनों का व्यक्तित्व तथा कर्तृत्व न केवल भारतीय नारी के लिए, अपितु देश के लाखों नर-नारियों एवं नवपीढ़ी के लिए सतत प्रेरणा का स्रोत बने रहेंगे।



# परिशित

## THE FOOTFALLS*

—Sister Nivedita

We hear them, O Mother !
Thy footfalls,
Soft, soft, through the ages
Touching earth here and there.
And the lotuses left on Thy footprints
Are cities historic.
Ancient scriptures and poems and temples.
Noble strivings, stern struggles for Right.

Where lead they, O Mother !
Thy footfalls ?
O grant us to drink of their meaning !
Grant us the vision that blindeth
The thought that for man is too high.
Where lead they, O Mother !
Thy footfalls ?

Approach Thou, O Mother, Deliverer !
Thy children. Thy nurslings are we !
On our hearts be the place for Thy stepping,
Thine own, Bhumia Devi, are we.
Where lead they, O Mother !
Thy footfalls ?

* *Footfalls of Indian History* by Sister Nivedita, p.v, Published by Longmans, Green and Co. 3 9 Paternoster Row, London, 1915

# आधार-ग्रन्थ-सूची

## हिंदी-पुस्तकें :


ओबराय, डॉ० हरवंशलाल, *डॉ० हरवंशलाल ओबराय समग्र* (संपादन तथा संकलन : स्वामी संवित् सुबोध गिरि), पाँच खण्ड (बीकानेर, 2010-2012)

काश्यप, सुभाष, *सांविधानिक विकास और स्वाधीनता संघर्ष*

टैगोर, रवीन्द्रनाथ, *गोरा* (अनु० धन्य कुमार जैन)

गुप्त, हेमेन्द्रनाथ, *देशबन्धु चितरंजन दास* (दिल्ली, 1960)

ग्रोवर, बी०एल० एवं यशपाल, *आधुनिक भारत का इतिहास* (दिल्ली, 2001)

दामोदरन, डी०के०, *भारतीय चिन्तन-परम्परा*

'दिनकर' रामधारी सिंह, *संस्कृति के चार अध्याय* (पटना, 1970)

दीक्षित, शम्भुशरण, *रात्रीयता तथा भारतीय शिक्षा* (जालन्धर)

देवेन्द्र, प्रो० एवं प्रो० श्याम सुन्दर शुक्ल, *धर्मपरायण महामना मदनमोहन मालवीय* (कुरुक्षेत्र, 2011)

नागौरी, डॉ० एस०एन०, नागौरी, जीतेश, *भारतीय इतिहास कोश* (आगरा, 1997)

पण्डित, एम०पी०, *श्रीअरविन्द* (दिल्ली, 1985)

प्रताप सिंह, *आधुनिक भारत का इतिहास* (1906-1950) (दिल्ली)

प्रताप सिंह, राणा, *भगिनी निवेदिता* (लखनऊ, 1967)

भारद्वाज, दिनेश चन्द्र, *आधुनिक भारतीय संस्कृति का इतिहास* (लखनऊ, 1977)

मित्तल, डॉ० सतीश चन्द्र, *भारत का सामाजिक-आर्थिक इतिहास (1757-1947)*, (पंचकुला, 2005)

मित्तल, डॉ० सतीश चन्द्र, *रात्रीय चैतन्य के प्रकाश में भारत का स्वाधीनता संघर्ष* (नयी दिल्ली, 2012)

वर्मा, डॉ० हरिश्चन्द्र, *भारतीय इतिहास की आत्मा वेदान्त* (रोहतक, 2010)





वाचस्पति, इन्द्र, *लोकमान्य तिलक और उनका युग* (नयी दिल्ली, 1963)

विद्या भारती प्रकाशन, *भगिनी निवेदिता* (कुरुक्षेत्र, 2003)

विद्या भारती प्रकाशन, *श्रीमाँ* (कुरुक्षेत्र, 2003)

विवेकानन्द, स्वामी, *विवेकानन्द-साहित्य*, भाग 4 एवं 5 (कोलकाता, 1989)

शास्त्री, अलगूराय, *लाला लाजपत राय* (प्रयाग, 1969)

श्रीमाँ (अल्फासा, मिर्रा), *आदर्श माता, पिता, अध्यापक और बालक* (कोलकाता)


## English Books:

**Unpublished Documents:**


Home Department (Public) Government of India


**Published Documents:**


Ayngar, K.R. Srinivasa, *On the Mother: The Chronicle of a Manifestation and Ministry* (Pondicherry, 1978)

Alexander, F.J., *The Sister Nivedita : Her Indian Outlook*

Alfassa, Mirra (Shri Maa), *The Mother on herself* (Pondicherry, 1977)

Alfassa, Mirra (Shri Maa), *The collected works of the Mother* (17 Vols.) (Pondicherry, 2002)

Alfassa, Mirra (Shri Maa), *The Rays of light* (Pondicherry, 1977)

Alfassa, Mirra (Shri Maa), *Mother's Agenda*, Vol. I (Pondicherry, 1954)

Aurobindo, Sri, *Eternity Delegate* (Pondicherry, 1928)

Bannerjee, S.N., *A Nation in Making* (London, 1925)

Besant, Annie, *The Future of Indian Politics : A Contribution to the Understanding of Present-Day Problems* (Adyar. 1922)

Besant, Annie, *An Autobiography* (Adyar, 1930)

Besant, Annie, *England, India, and Afghanistan ; And, The Story of Afghanistan, Or, Why the Tory Government Gags the Indian Press: A Plea for the Weak Against the Strong* (Adyar, 1931)

Besant, Annie, *Four Great Religions : four lectures* (London, 1897)

Besant, Annie, *The School Boys as citizen*

Besant, Annie, *The Future of young India... Address etc.* (Adyar, 1915)

Besant, Annie, *Education as a moral duty* (Benaras, 1903)

Besant, Annie, *The Education of the Indian Girls* (Benaras, 1904)

Besant, Annie, *An Ancient ideas in modern life* (Adyar, 1900)

Besant, Annie, *Education as a basis of National Life* (Adyar, 1908)

Besant, Annie, *Essentials of an Indian Education*

Besant, Annie, *India her case and her future*

Besant, Annie, *India and the Empire* (London, 1914)

Besant, Annie, *India Bound or Fire*

Bestermen, Theodore, *Annie Besant : A Modern Prophet* (London, 1934)
Bose, Nemai Sadhan, *The Indian National Movement : An outline* (Calcutta, 1965)
Dass, Nilmoni (Ed.) *Glimpses of the Mother's life*, Vol. I (Pondicherry, 1978)
Datta, K.K., *A Social History of Modern India* (Calcutta, 1975)
Dodwell, H.H., *Cambridge Shorter History of India in the year 1919* (Cambridge, 1934)
*Encyclopædia Britannica* (1945 Ed.)
Gandhi, M.K., *The Collected Works of M.K. Gandhi*, Vol. XVII, XVIII (Ahmadabad)
Keer, Dhanajaya, *Lokmanya Tilak : Father of the Freedom Fighter* (Bombay, 1959)
MacMillian, Margret, *Women of the Raj: The Mothers, Wives, and Daughters of the British Empire in India* (New York, 1988)
Mahajan, Sneh, *Imperial Strategy of Modern Politics : Indian legislative at work (1909-1920)* (Delhi, 1983)
Majumdar, B.B. & B.P. Majumdar, *Congress and Congressmen in Pre-Gandhian Era (1885-1917)*, (Calcutta, 1967)
Mark Bevir, *Theosophy and the origin of the Indian National Congress*
Mellesan, G.P., *Duplex and a struggle for India by the European Nations* (Oxford, 1890)
Mishra, J.P. (Ed.), *Researches in Social Sciences* (Agra, 1993)
Mittal, S.C., *Freedom Movement in Punjab (1905-1929)* (Delhi, 1977)
Mittal, S.C., India Distorted : *A Study of British Historians on India*, Vol. III (New Delhi, 1998)
Modi, Rekha, *The Quest for Roots* (Delhi, 1999)
Munshi, K.M., *Pilgrimage to Freedom* (Bombay, 1967)
Nahar, Sijata, *Mother's Chronicles* (Mysore, 1986)
Nehru, Jawaharlal, *An Autobiography* (London, 1958)
Nethercot, Arthur Hobart, *The first five lives of Annie Besant* (London, 1960)
Nivedita, Sister (Margret Noble), *Religion and Dharma* (London, 1915)
Nivedita, Sister (Margret Noble), *Footfalls of Indian History* (London, 1915)
Nivedita, Sister (Margret Noble), *Cradle tales of Hinduism* (London, 1907)
Nivedita, Sister (Margret Noble), *The Master as I saw him* (New York, 1910)
Nivedita, Sister (Margret Noble), *The Collected Works of Sister Nivedita*, 5 Vols. (Calcutta, 1967)
Nivedita, Sister (Margret Noble), *The Web of Indian Life* (1917)
Parvate, T.V., *Bal Gangadhar Tilak*
Prakash, Shri, *Annie Besant : As women and as leader* (Bombay, 1962)
Punnis, K.V., *The Constitutional History of India*
Ronald, Romain, *The Life of Swami Vivekananda and the universal gospel* (1965)
Ronaldshay, Earl of, *The Life of Lord Curzon*, Vol. I (London, 1928)
Salibery, George, *Dr. Annie Besant : Fifty years in Public work* (1924)
Sharma, D.S, *Hinduism through the Ages* (Mumbai, 2000)
Sitaramayya, Pattabhi, *History of the Indian National Congress (1885-1935)*, Vol. I (Delhi, 1969)
Stead, William T., *Annie Besant : A Character Sketch* (Adyar, 1948)
Tagore, R.N., *The Religion of a unrest* (Calcutta, 1953)
Tathagatananda, Swami, *Mediation of Swami Vivekananda* (New York, 1994)
West, Geoffrey, *The Life of Annie Besant* (London, 1929)

## पत्र-पत्रिकाएँ :

**English :**

*Bhawan's Jurnal*
*Bulletin of Sri Aurobindo Centre of Education*
*International Journal of Hindu Studies*
*Journal of South Asian Studies*
*Modern Review*
*Organizer*
*Punjabee*
*Shimla Past and Present*
*The Times of India*
*The Tribune*

**हिंदी :**

*जाह्नवी*
*दैनिक जागराण*
*पाञ्चजन्य*
*रातृधर्म*
*हिंदुस्थान समाचार*